प्राप्ति स्थान—

सदासुख मोतीचन्द गोलछा
पो: विराट नगर (नेपाल)

साहित्य-निकेतन
४०९३ नया बाजार, दिल्ली

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा, भीनासर
बीकानेर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण २२००
वि. सं. २०१९ चैत्र
मार्च, १९६३
पृष्ठ १८८

मुद्रक :
अशोककुमार गुप्ता
आदर्श मुद्रणालय
दाऊजी मन्दिर के निकट
बीकानेर (राजस्थान)

मूल्य : १.००

स्व० श्री मोतीचन्द जी गोलछा

आभार-प्रदर्शन

प्रात स्मरणीय आचार्यश्रीतुलसीकी विशेपकृपामे महान्-मनिणे मुनि श्री धनराजजीका वि स० २०१९ का चातुर्मास हमारे भीनासरमे हुआ। इस चातुर्मासिमे मुनिश्रीने अपने सतत परिश्रमसे ज्ञान-प्रकाश पुस्तक लिखकर जैनसमाजको जो कृति दी है, उसके लिए जैनसमाज तो आभारी है ही, साथ-साथ जैनश्वेताम्बरतेरापथीसभा-भीनासर तो मुनिश्रीके इस पुनीत कार्यसे सदैव अत्यधिककृतज्ञ रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तकके प्रकाशनका लागत खर्च श्रीमान् लूणकरणजी गोलछा (भीनासर-निवासी) ने अपने पूज्य पिताजी (स्व० श्री मोतीचन्दजी गोलछा) की पुण्यस्मृतिमे सभाको देकर अनुगृहीत किया। इस कार्यके लिए श्री गोलछाजीको सभा हार्दिक धन्यवाद देती है।

स्थानीय गुलाबचन्द वैद, सहालचन्द वैद, जीवराज कोचर, पूरणचन्द काकरिया, शुभकरण पटवा, बुलाकीचन्द सेठिया, छगनमल सेठिया एव गगाशहरनिवासी गणपतलाल चोपड़ा, रतनलाल माल आदि-आदि कतिपय बन्धुओके अथक परिश्रमसे इस पुस्तकका सम्पादन एव प्रकाशन कार्य सुसम्पन्न हो सका अत उन्हे भी इस समय नही भुलाया जा सकता।

मंगलचन्द वैद

मंत्री, श्रीजैनश्वेताम्बर तेरापन्थीसभा, भीनासर

सम्पादकीय

मुनिश्री धनराजजी उच्चकोटिके विचारक, लेखक, विद्वान्, तेरापन्थसम्प्रदायमे सर्वप्रथम–शतावधानी एव प्रतिभासम्पन्न महान् सन्त हैं। दूर-दूर तक विचरण करके आपने अनेक कष्ट सहते हुए भी जनकल्याण किया है। आप इधर कुछ वर्षोंमे अस्वस्थ हैं। औषधि–उपचार और उसके लिए विश्रामकी आवश्यकताके कारण आपको इधर रुकना पडा। विश्रामके अनुकूल स्थान समझकर आप चैत्र मासमे भीनासर पधारे। आचार्यश्रीतुलसीने हम पर पूर्ण कृपाकर आपका चातुर्मास भी यहीके लिए फरमादिया और इस तरह सौभाग्यसे हम करीब आठ महीनो तक आपकी सेवाका लाभ ले सके। त्याग, प्रत्याख्यान, तपस्या, स्वाध्याय आदि अनेक प्रकारसे विशेष धर्मजागृति हुई। अस्वस्थ रहते हुए भी आप विविध धर्मोपदेश दिया करते, जो हमारे आलस्यरोगको मिटानेके लिए दवाका और आत्माके लिए एक अच्छी खुराकका काम करता।

हमारे गावके लिए आपने कई अमिट देने दी हैं, उनमेसे ज्ञान-प्रकाश नामक पुस्तककी रचना भी एक है। वास्तवमे इस पुस्तकका नाम ज्ञान–प्रकाश गुणनिष्पन्न है। यद्यपि अनेक सूत्रो एव ग्रन्थोका सार इसमे है, पर नन्दीसूत्र तो एक प्रकारसे इसमे भाषाका रूप लेकर ही अवतरित हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

पुस्तककी अधिक विशेषता मुझे बतलानेकी आवश्यकता नही। पाठकोके हाथोमे यह है ही। वे पढकर स्वयं ही सोचे।

आचार्यप्रवरने महती कृपाकर आप जैसे महान् प्रभावशाली सन्तका चातुर्मास हमारे पुरके लिए दिया, यह बडे सौभाग्यकी बात है।

अस्वस्थावस्थाके कारण दुर्बल होने पर भी इस पुस्तककी रचना करनेमे आपने जो विशेष कष्ट उठाया, यह बात चिरकाल तक हमारे स्मृतिपटल पर अङ्कित रहेगी।

साथ-साथ उन (महालचन्द बैद आदि) सज्जनोको भी कैसे भुलाया जा सकता है जिनके विशेष सहयोगसे इस पुस्तकके सम्पादनकार्यको व्यवस्थित और सुन्दर ढगसे सम्पन्न किया गया।

पाठकगण ध्यानसे पढकर इसका लाभ ले तभी हमारा परिश्रम सफल है।

गुलाब

भूमिका

ज्ञान संसारमे सबके लिए आवश्यक है। ज्ञानके बिना मनुष्य पशुके समान है। पशुओमे भी कदाचित् ज्ञान होता ही है। अपना इष्ट–अनिष्ट इतरश्रेणीके जीव भी समझते है। ज्ञानका विस्तृत विवेचन जैनशास्त्रो ने जितना किया गया है संभवत उतना सूक्ष्मविवेचन अन्यत्र दुर्लभ है।

जैनश्वेताम्बरतेरापथसम्प्रदायके मुनिश्री वनराजजी शतावधानी है और उच्चकोटिके विद्वान् है। शास्त्रसमुद्रका मथन करके अस्वस्थ अवस्थामे आपने जो ज्ञान–प्रकाश पुस्तककी रचना की है, वह पाठकोके सामने है। इस पुस्तकमे मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव व केवलज्ञानके भेद–प्रभेद शास्त्रीय सान्तियोंमे बडी सरलताके साथ सकलित किए गए है। ज्ञानके साथ–साथ अज्ञानका भी विस्तृत विवेचन इसमे है।

जैनलोग तो इस पुस्तकसे बहुत कुछ सीख सकेगे ही, लेकिन अजैन लोगोके लिये भी यह बहुत उपयोगी पुस्तक है। वैज्ञानिक गवेषको-के लिये इसमे चिंतन व मननके अतिरिक्त अपनी गवेषणाके लिये यथेष्ट सामग्री मिलेगी। सूत्र व ग्रन्थोका हवाला रहनेसे पुस्तक अनुसन्धित्सुओ (अनुसधानकी ईच्छा रखनेवालों) के लिये बहुत सहायक होगा। ज्ञानसे सबन्धित प्राय समस्त विषयो पर इसमे प्रकाश डाला गया है। जैनशिक्षार्थियोके लिये तो यह एक अमूल्य सहायक ग्रन्थ (Reference Book) सिद्ध होगा। आशा है प्रत्येक वर्गके लोग इससे लाभ उठायेगे।

दिनांक ९–१२–६२ — छोगमल चोपड़ा

गगाशहर — बी० ए० बी० एल

आदिकथन

जैसे देखनेके लिए आखे चाहिए, सुननेके लिए कान चाहिए, सूंघनेके लिए नाक चाहिए, बोलनेके लिए जीभ चाहिए, चलनेके लिए पैर चाहिए, काम करनेके लिए हाथ चाहिए, खाने के लिए अन्न चाहिए, पीनेके लिए घन (पानी) चाहिए, धन्धे के लिए धन चाहिए, विचारविमर्शके लिए मन चाहिए और शरीरकी शुद्धिके लिए स्नान चाहिए, वैसे ही आत्माकी शुद्धिके लिए पवित्रज्ञान भी अवश्य चाहिए। पूर्वोक्त वस्तुओके अभावमे इतना नुकसान नही होता, जितना ज्ञानके अभावमे होता है। नुकसान क्या होता है, वास्तवमे ज्ञानके बिना मनुष्यकी आंखे ही नही खुलती। इन राजस्थानी कहावतको कौन नही जानता कि अजाण र आंधो बराबर हुवै।

ज्ञानका महत्त्व

सभी धर्मशास्त्रोमे ज्ञानको बहुत बडा माना गया है। देखिए— शुक्लयजुर्वेदमे ज्ञानको सूर्यतुल्य कहा है[1]। गीताने ज्ञानको सबसे अधिक पवित्र माना है[2]। मनुस्मृतिमे ज्ञानसे मुक्ति प्राप्ति कही है[3]। वशिष्ठस्मृतिमे ज्ञानसे बुद्धिका शुद्ध होना बतलाया

(1) ब्रह्म सूर्यसम ज्योति

(2) नहि ज्ञानेन सदृश, पवित्रमिह विद्यते

(3) बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति

है[1]। तथा जैनशास्त्रोंमें तो पढमं नाणं तओ दया पहले ज्ञान है और पीछे दया है[2]। णाणेण विना न हुंति चरण गुणा ज्ञानके बिना चारित्रके गुण नही होते[3]। णाणेण य मुणि होई ज्ञानसे ही मुनि होता है[4]। णाणेण जाणइ भावे ज्ञानसे वस्तुको जाना जाता है[5]। णाणी नो परि देवए ज्ञानी कभी शोक नही करता[6]। तथा णाणं पयासकरं ज्ञान प्रकाश करनेवाला है आदि-आदि अमूल्य सूक्तियों द्वारा ज्ञानको जीवनका प्राण ही बना दिया है, अस्तु !

विज्ञानका युग

आज तो युग भी विज्ञानका ही कहा जाता है। इसमे कई आकाशका अन्वेषण कर रहे है तो कई पातालका। कई जलकी खोज कर रहे हैं तो कई स्थलकी। कई तनकी बीमारियोका पता लगा

---

(१) विद्ययामृतमश्नुते

(२) बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति

(३) दशवै— । ४ । १०

(४) उत्तराध्ययन— २८ । ३०

(५) उत्तरा.— २५ । ३२

(६) उत्तरा.— २८ । ३५

(७) उत्तरा.— १२ । १३

रहे है तो कई मनकी बीमारियोका । कई भूतकालकी बाते बतला रहे है तो कई भविष्यत्‌कालकी । कई मन्त्रविद्यामे प्रवीण बन रहे है तो कई तन्त्र एव यन्त्रविद्यामे । कई स्वरविद्यामे निष्णात हो रहे है तो कई शकुनविद्यामे । कई अर्थशास्त्र के विकाशमे सलग्न है तो कई कामशास्त्र के विकाशमे । कई राजनीतिकी छानबीनमे उद्यत है तो कई समाज एव गृहनितिकी छानबीनमे । कितना-क लिखा जाय, जिनको जो भी विषय अच्छा लगता है उसीके पीछे जी-जानसे जुड जाते है एव उसकी बारीकीमे घुमनेकी पूरी-पूरी कोशिश करते है, लेकिन जहा आत्मज्ञानका प्रश्न आता है वहा अधिकाश व्यक्ति उदासीनता और निरुत्साहका प्रदर्शन करते है । यही तो कारण है कि आज विश्वमे सद्‌गुणोका ह्रास होता जा रहा है और जब तक आत्मिकज्ञानकी तरफ लोगोका लक्ष्य नही होगा तब तक यह ह्रास क्रमश बढता ही जाएगा ।

ज्ञानप्रकाश

आजकलके लोग साधु-सतोके पास जाकर ज्ञानचर्चा करनेकी अपेक्षा पुस्तक पढकर ज्ञान प्राप्त करना अधिक पसन्द करते है । अत प्रेरणा हुई कि जिस ज्ञानमे जीव-अजीव आदि पदार्थ जाने जाते है उस ज्ञानके विषयमे कुछ प्रकाश डाला जाय । बस, इसी भावनासे प्रेरित होकर मैंने इस पुस्तककी रचना प्रारम्भ की और इसमे ज्ञान क्या है ? उसके कितने प्रकार है ? किस ज्ञानके कौन अधिकारी है ? कौन-सा ज्ञान कैसे और कब होता है ? आदि-आदि विषयोको जहा तक हो सका है, सरल ढगसे समझानेकी चेष्टा की है एव इसका नाम ज्ञानप्रकाश रखा है ।

पांच पुञ्ज

ज्ञानप्रकाशमे पाच पुञ्ज है। पहले पुञ्जमे मतिज्ञानका विस्तार है। उसमे मतिज्ञानके अवग्रह आदि २८ तथा ३३६ भेद इन्द्रियो और मनकी व्याख्या, सज्ञा, स्मृति तथा स्वप्नोका सुन्दर वर्णन है एव मति और स्मृतिके अनेक चमत्कारी उदाहरण हैं। दूसरे पुञ्जमे श्रुतज्ञानका विवेचन है। उसमे श्रुतके १४ भेद एवं वत्तीस सूत्रोका परिचय, सूत्र पढने-पढानेकी विधि, चौंतीस अस्वाध्याये, चौदह प्रकारके श्रोता आदि कहे गए है। तीसरे पुञ्जमे अवधि-मन पर्यवज्ञानका भेद-प्रभेदसे कथन है। चौथे पुञ्जमे केवल-ज्ञान एव पाचो ज्ञानोसे सम्वन्धित जानने योग्य कतिपय प्रश्न है। पाचवेपुञ्जमे तीन अज्ञान, चार दर्शन एवं बारह उपयोगोकी चर्चा है।

आधारभूत आगम एवं ग्रंथ

ज्ञानप्रकाशके मुख्य आधार श्री नन्दी तथा पन्नवणा सूत्र है। प्रसंगवश स्थानाग, भगवती, समवायाग, उत्तराध्ययन, दशवै-कालिक, अनुयोगद्वार, व्यवहार एव निशीथ आदि सूत्रोके तथा विशेपावश्यकभाष्य, तत्त्वार्थसूत्र, जैनसिद्धान्तदीपिका और जैन-सिद्धान्तवोलसग्रह आदि अनेक ग्रन्थोके उद्धरण भी स्थान-स्थान पर दिए है। वास्तवमे यह ग्रन्थ ज्ञान सम्वन्धी वावतोका एक शाम्यिक सग्रह है। जनताको जैनसिद्धान्ताभित-ज्ञानकी जानकारी देनेमे सम्भवत काफी-कुछ मदद करेगा ऐसा मेरा सुदृढ विश्वास है।

मैं और भीनासर

लगभग छ महीनोंमे शारीरिक अस्वस्थताके वश आचार्य श्री तुलसीकी आज्ञासे मै यहा (भीनासरमे) निवास कर रहा हू एव कठिन पथ्यके साथ आयुर्वेदिक औषधि ले रहा हू और झूमरमुनि–मूलमुनि जी–जानसे मेरी परिचर्या कर रहे है। भीनासर पार्श्ववर्ति–गगाशहरकी अपेक्षा बहुत छोटा-सा क्षेत्र है। यहा थोडे-से श्रद्धाके घर है एव इने-गिने श्रावक है, तथापि श्रद्धा, भक्ति और लगनकी लिहाजसे प्रशसनीय है। ज्ञानप्रकाशका प्रारम्भ तो कई वर्षों पहले ही हो चुका था, किन्तु अन्यान्य कार्यवश यह ग्रन्थ अपूर्ण पडा था। स्थानीय एक श्रद्धालु श्रावककी प्रेरणा प्राप्त हुई और निवास–स्थानमे पुस्तकालयका अभीप्टयोग मिला अत इच्छा हुई कि इसे पूर्ण कर दिया जाय। यद्यपि अस्वस्थदशामे परिश्रम नही करना चाहिए, किन्तु मनके वेगको रोकना और एकदम सो–बैठकर समय व्यतीत करना प्रकृतिके अनुसार मुझे अत्यन्त कठिन प्रतीत हुआ अत मैने थोडा-थोडा परिश्रम शुरू किया एव फलस्वरूप यह ग्रन्थ तैयार हो गया।

कल्पनातीत लाभ

शरीर अस्वस्थ होते हुए भी ज्ञानप्रकाशकी रचना करते समय मुझे अद्भुत मानसिक शान्ति तो मिलती ही थी, किन्तु कई बार शारीरिक अस्वस्थता भी विस्मृत हो जाती थी। मैं जानता था कि ज्ञानका विषय बहुत ही गम्भीर एव सूक्ष्म है, लेकिन इन पुस्तकोंको लिखनेसे पता लगा कि विषय गम्भीर तो अवश्य है,

किन्तु रूक्ष न होकर अत्यधिक सरस एवं आकर्षक है। पढनेकी अपेक्षा किसीको पढानेसे अधिक ज्ञान होता है और तद्विपयक ग्रन्थ लिखने पर पढानेसे भी कही सैकड़ो-हजारो गुना ज्ञान लेखकको हो जाता है, क्योकि लिखनेसे पहले एक-एक तत्त्वको समझनेके लिए कई-कई घण्टे लगाने पड जाते है अस्तु। मुझे इस ग्रन्थको लिखनेसे कल्पनातीत ज्ञानका लाभ हुआ है। मै आशा करता हू कि ज्ञानके पिपासु पाठकगण इसे रुचिपूर्वक पढकर सदाचारकी ओर अग्रसर बनेगे एवं मेरे इस प्रयासको सफल बनायेगे।

वि स. २०१६
आश्विन कृष्णा दूज शनिवार
भीनासर (बीकानेर)
राजस्थान

— धनमुनि

प्रश्नोत्तरोंकी विषय सूची

पहला पुञ्ज

दूसरा पुञ्ज

तीसरा पुञ्ज

चौथा पुञ्ज

पाँचवां पुञ्ज

समर्पण

जिनकी असीम कृपा से मेरे हृदयमें सद्ज्ञान का प्रकाश हुआ और जिनकी सौम्यमुद्रा आराध्यदेव बनकर मनमन्दिरमें विराजमान हो रही है, उन परमोपकारी पूज्य-परमेश्वर स्वर्गीय श्री कालूरामजी महाराजके चरणकमलों में

पहला पुञ्ज

प्रश्न १—ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर — ज्ञान को समझने के लिए ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान इन तीनों को समझना होगा। जो जीव-अजीव आदि पदार्थों को जानता है वह व्यक्ति ज्ञाता है जिनको जानता है वे जीव-अजीव आदि पदार्थ ज्ञेय हैं और जिस चेतनाशक्ति के व्यापार द्वारा जानता है उसका नाम ज्ञान है। ज्ञान आत्मा का गुण है। वह आत्मा से कभी अलग नहीं होता।

प्रश्न २—ज्ञान कितने हैं ?

उत्तर — जैनशास्त्रों में पांच ज्ञान माने गए हैं[1]। आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान।

प्रश्न ४—इन्द्रियो का क्या मतलब है ?

उत्तर — आत्मिकऐश्वर्ययुक्त होने से आत्मा को इन्द्र कहते हैं। उस इन्द्र को जिनके द्वारा पहचाना जाता है उन्हे इन्द्रियाँ कहते है। अथवा जो अपने-अपने प्रतिनियत शब्दादि-विषयो का ज्ञान करती है उनका नाम इन्द्रियाँ है। जैसे— कान केवल शब्द का, नेत्र रूप का, नाक गध का, जीभ रस का और स्पर्शन-इन्द्रिय स्पर्श का ज्ञान करती हैं, क्योंकि ये ही इनके निश्चित विषय हैं।

इन्द्रियाँ दो प्रकार की है—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय[1]। द्रव्येन्द्रिय पुद्गलमय होने से अजीव है और भावेन्द्रिय ज्ञानमय होने से जीव है।

द्रव्येन्द्रिय के दो भेद है— निर्वृत्ति-इन्द्रिय और उपकरण-इन्द्रिय[2]। इन्द्रियो के जो ऊपर के या अन्दर के आकार हैं उन्हे निर्वृत्ति-इन्द्रिय कहते हैं एव उन आकारो मे ध्वनिवर्धकयत्र एव दूरबीन आदि की तरह जो सुनने-देखने आदि मे सहायता करने की पौद्गलिकशक्ति है उसे उपकरण-इन्द्रिय कहते हैं। द्रव्येन्द्रियाँ-पर्याप्तिनामकर्म तथा जातिनामकर्म का उदय है।

भावइन्द्रिय के भी दो भेद है— लब्धि-इन्द्रिय और उपयोग-इन्द्रिय।

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय और अन्तरायकर्म के क्षयोपशम से जो सुनने-देखने आदि की शक्ति का लाभ हुआ है वह लब्धि-इन्द्रिय है तथा उस लाभ का जो उपयोग होता है यानि शब्दादि-विषयो का ज्ञान होता है वह उपयोग-इन्द्रिय है।

उपर्युक्त चारो प्रकार की इन्द्रियाँ ठीक होने से ही इन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नही। जैसे— चक्षु का आकार (निर्वृत्ति-इन्द्रिय) न हो तो देखा नही जाता। चक्षु का आकार होने पर भी यदि उसमे

---

(१) प्रज्ञापना पद १५-उ-२

(२) स्था-५ उ-३ सू-४४३ टीका तथा तत्त्वार्थसूत्र-अ-२ सू-७

लेकिन भीतर की रचना सब जीवो के चार इन्द्रियो की तो एक-सी ही होती है (जैसे– कान की भीतरी आकृति सब जीवो की कदम्ब के फूल जैसी है। आख की चन्द्रमा व मसूर की दाल जैसी है जीभ की खुरपे जैसी है। नाक की अतिमुक्तक-कुसुम-चन्द्रिका या लोहार की धोकनी के समान है किन्तु स्पर्शन-इन्द्रिय की अनेक प्रकार की होती है[1]।

प्रश्न ६—पांच इन्द्रियों के विषय एवं विकार कितने हैं ?

उत्तर — विषय तेईस हैं[2] और विकार दो-सौ चालीस हैं। इन्द्रियो के जानने योग्य वस्तु को विषय कहते है और उन पर जो राग-द्वेष होता है उसे विकार कहते हैं। तेईस विषय एव दो-सौ चालीस विकारो का विवेचन इस प्रकार है—

श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय हैं– जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। तीनो प्रकार के शब्द शुभ भी होते हैं और अशुभ भी होते हैं– अत. छह हो गये। इन छहो पर राग भी आता है और द्वेष भी आता है, इसलिए बारह हो गये—ये श्रोत्रेन्द्रिय के बारह विकार कहलाते है। शब्द मे आसक्त जीव मर कर बहरे या कर्णरोगी बनते है अथवा मक्खी, मच्छर आदि चतुरिन्द्रिय बन जाते है।

चक्षुरिन्द्रिय के पाच विषय हैं- काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद। ये पाचो ही रग सचित्त-अचित्त और मिश्र ऐसे तीन तरह के होते है अत ५ × ३=१५। पन्द्रह शुभ और पन्द्रह अशुभ-तीस। तीस पर राग और द्वेप होने से साठ। यो चक्षुरिन्द्रिय के साठ विकार होते हैं। रूप मे आसक्त जीव नेत्ररोगी, अन्धे, काणे या कीडी आदि त्रीन्द्रिय बनते हैं।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय है— सुगन्ध और दुर्गन्ध। ये दोनो गन्ध सचित्त-अचित्त-मिश्र के भेद से छह। छहो पर राग-द्वेप होने से बारह।

---

(१) प्रज्ञापना पद १५ उ १ तथा स्था० ५ उ ३ सू० ४४३ टीका

(२) प्रज्ञापना पद १५ उ १ तथा अनुयोगद्वार सू १६४

यों घ्राणेन्द्रिय के बारह विकार माने जाते है। गन्ध मे मूर्च्छित प्राणी मर कर नाकसम्बन्धी रोग वाले या कृमि-गड्ढ आदि द्वीन्द्रिय बनते हैं।

रसनेन्द्रिय के पाँच विषय है — तीखा, कड़ुवा, कषैला, खट्टा और मीठा। ये पाँचों रस सचित्त-अचित्त-मिश्र के भेद से पन्द्रह। पन्द्रह शुभ और पन्द्रह अशुभ-तीस। तीस पर राग-द्वेष होने से साठ। यों रसनेन्द्रिय के साठ विकार कहलाते है। रसास्वादन मे आसक्त प्राणी मरकर गूंगे, मूंगे, तुतले या एकेन्द्रिय जीव बनते हैं।

स्पर्शन-इन्द्रिय के आठ विषय हैं— खरदरा, कोमल, भारी, हल्का, ठंडा, गर्म, चिकना और रूखा। ये आठों स्पर्श सचित्त-अचित्त-मिश्र के भेद से चौबीस। चौबीस शुभ और चौबीस अशुभ-अड़तालीस। अड़तालीस पर राग-द्वेष होने से छियानवे। यों स्पर्शन-इन्द्रिय के छियानवे विकार होते हैं। श्रोत्र के बारह, चक्षु के साठ, घ्राण के बारह, रसन के साठ और स्पर्शन के छियानवे— यों सब मिलकर दो-सौ चालीस विकार हो गये। इन विकारों से ही पाप लगता है। विषय तो केवल जानने योग्य वस्तु है, उनसे पाप नहीं लगता।

को वे भी मीठे लगते हैं।

सतो के शुभ दर्शन भी पापी जीवो के द्वेष का कारण बन जाते हैं। कुरूप स्त्रियाँ भी कामी पुरुषो के हृदय मे प्रेमोत्पत्ति का कारण बन जाती हैं।

प्रश्न ८— पांच इन्द्रियो की ज्ञानशक्ति तुल्य ही है या न्यूनाधिक ?

उत्तर — चक्षुरिन्द्रिय की ज्ञानशक्ति सबसे अधिक है। वह रूप के पुद्गलो का स्पर्श किए बिना ही रूप का ज्ञान कर लेती है। श्रोत्रेन्द्रिय की ज्ञानशक्ति चक्षु से कम है, क्योकि वह शब्द के पुद्गलो को स्पर्श करके जानती है। शेष तीन इन्द्रियो की ज्ञानशक्ति श्रोत्र से भी कम है। कारण, ये तीनो गन्ध आदि के पुद्गलो को स्पर्शमात्र से नही जान सकती, किन्तु स्पर्श होने के बाद आत्मा अपने प्रदेशो द्वारा उन्हे ग्रहण करती है एव पीछे घ्राणादि इन्द्रियो को उनका ज्ञान होता है[1]।

प्रश्न ६— इन्द्रियाँ कितनी दूर तक के शब्दादि–विषयो को जान सकती हैं ?

उत्तर — श्रोत्रेन्द्रिय जघन्य— कम से कम आगुल के असख्यातवे भाग से और उत्कृष्ट बारह योजन मे आये हुए (मेघ आदि की गर्जना के) शब्दो को सुन सकती है, लेकिन वे शब्द शब्दान्तर व वायु आदि मे प्रतिहत-छिन्नभिन्न नही होने चाहिए। ऐसी भी प्रसिद्धि है कि चक्रवर्ती की राजधानी या सेना बारह योजन विस्तृत होती है। उसमे सूचना देने के लिए समय–समय पर घटा बजाया जाता है। उसका शब्द समूची नगरी या सेना मे सुनाई देता है।

चक्षुरिन्द्रिय जघन्य आगुल के सख्यातवें भाग और उत्कृष्ट साधिक लाखयोजन दूर रहे हुए रूप को देख सकती है, लेकिन बीच मे किसी का

---

(१) नन्दी, सूत्र ३८ गाथा ८५ के आधार से

व्यवधान नहीं होना चाहिए। वैक्रियशक्ति से जो मनुष्य लाखयोजन का रूप बनाता है, वह अपने पैरों के नीचे तक देखता है। सम्भव है उसी की अपेक्षा से यहाँ साधिक–लाखयोजन कहे हों।

प्रवचनसार द्वार– १८८ में कहा है कि यह साधिक–लाखयोजन का कथन अभास्वर-अप्रकाशमान पदार्थों की अपेक्षा से समझना चाहिए। तेजस्वी द्रव्य तो और भी दूर से देखे जा सकते हैं। जैसे— पुष्करार्धद्वीप में मानुषोत्तरपर्वत के निकटवर्ती–मनुष्य कर्क-संक्रान्ति में साधिक २१ लाखयोजन दूर रहे सूर्य को भी देख लेते हैं।

घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय ये तीनों इन्द्रियाँ जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग से और उत्कृष्ट नौ योजन से आये हुए अव्यवहित अर्थात् व्यवधानरहित गन्ध, रस और स्पर्श का ज्ञान करती हैं।

उत्तर — श्रोत्र और चक्षु ये दो तो कामी हैं एव शेष तीनो इन्द्रियाँ भोगी हैं। मतलब यह है कि शब्द और रूप दोनो का नाम काम है तथा गन्ध-रस-स्पर्श का नाम भोग है[1]। श्रोत्र–चक्षु ये दो इन्द्रियाँ क्रमश. शब्द-रूप से सम्बन्ध करती हैं अत. कामी कहलाती है एव घ्राण-रसन-स्पर्शन क्रमशः गन्ध–रस–स्पर्श से सम्बन्ध करती हैं इसलिए भोगी कहलाती है।

प्रश्न १२— काम-भोग का क्या अर्थ है ?

उत्तर — जिनकी केवल कामना–अभिलाषा ही होती है, किन्तु शरीर के विशिष्ट स्पर्श द्वारा कोई भी उपयोग, भोग एवं अनुभव नही होता उन्हे काम कहते हैं और जिनका शरीरस्पर्श द्वारा भोग किया जाता है उन्हे भोग कहते है। शब्द–रूप केवल अभिलाषा का सपादन करते हैं अत. काम हैं। गन्धादि द्रव्यो का शरीर उपभोग करता है अतः वे भोग है।

प्रश्न १३— मन का अर्थ समझाइये ?

उत्तर — जो शब्दादि सभी विपयो का ज्ञान करता है एव क्यो हुआ, कैसे हुआ, कब हुआ आदि-आदि आलोचना भी कर सकता है उसे मन कहते हैं। इन्द्रियाँ अपने-अपने प्रतिनियत विषयो को केवल वर्त्तमान काल मे जानती हैं जबकि मन प्रत्यक्ष-परोक्ष एव रूपी-अरूपी सभी द्रव्यो को तीनो काल मे ग्रहण कर लेता है। इन्द्रियो के सभी विषयो को ग्रहण करने के कारण इसको **नोइन्द्रिय** (इन्द्रियो जैसा) कहा है। यह भी चक्षु की तरह दूर से ही ज्ञान करता है अत अप्राप्यकारी है।

दो प्रकार का मन— मन भी इन्द्रियो की तरह द्रव्य-भाव के भेद से दो प्रकार का है। जो मनन-चिन्तन रूप आत्मा का विचार है वह भावमन है। उसे प्रवृत्त करने के लिये जो बाह्य पुद्गल लिये जाते हैं वे द्रव्यमन हैं। द्रव्यमन पुद्गलरूप होने से अजीव है एव भावमन आत्मा के परिणामरूप होने से जीव है।

---

(१) भगवती श० ७ उ० ७

भावमन दो प्रकार का है— लब्धिमन और उपयोगमन। मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से जो विचारशक्ति मिली है वह लब्धिमन है और उस विचारशक्ति का चिन्तन-मनन रूप जो उपयोग होता है वह उपयोगमन है। योगशास्त्रकार द्रव्यमन का स्थान वायु की तरह समूचे शरीर में मानते हैं जबकि दिगम्बराचार्य इसका स्थान हृदय कमल कहते हैं।

प्रश्न १४— इन्द्रिय और मन का विवेचन तो कुछ समझ में आ गया, अब इनकी सहायता से उत्पन्न होने वाले आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान के भेद समझाइये?

उत्तर— मतिज्ञान के दो भेद हैं— श्रुतनिश्रितमतिज्ञान और अश्रुतनिश्रितमतिज्ञान।

श्रुतनिश्रितमतिज्ञान— जिसके द्वारा ज्ञान होता है, उस शब्द या संकेत का नाम श्रुत है और निश्रित का अर्थ आधार या सहारा है। तात्पर्य निकला कि पूर्वसंगृहीत शब्द या संकेत के सहारे से अवग्रह, ईहा आदि रूप जो बुद्धि से सम्बन्धित ज्ञान उत्पन्न होता है उसे श्रुतनिश्रितमतिज्ञान कहते हैं। जैसे— किसी ने पूर्वकाल में किसी व्यक्ति द्वारा या किसी ग्रन्थ द्वारा घड़े का स्वरूप समझ रखा है। कालान्तर में घड़ा सामने आते ही वह घड़े का ज्ञान कर लेता है। यद्यपि ज्ञान करते समय वह किसी भी प्रकार से श्रुत का सहारा नहीं लेता, फिर भी पहले लिया हुआ होने से उस ज्ञान श्रुतनिश्रितमतिज्ञान कहलाता है।

अश्रुतनिश्रितमतिज्ञान— जो बुद्धिरूपी ज्ञान किसी भी प्रकार के श्रुत का सहारा लिए बिना ही उत्पन्न हो जाता है वह अश्रुतनिश्रित-मतिज्ञान कहलाता है। अश्रुतनिश्रितमतिज्ञान में चार प्रकार की बुद्धियाँ कही हैं। वे ये हैं— १. औत्पत्तिकी, २. वैनयिकी, ३. कार्मिकी, ४. पारिणामिकी।

१. औत्पातिकी-बुद्धि

बिना देखे, बिना सुने और बिना जाने विषयो को उसी क्षण विशुद्ध एवं यथावस्थित रूप से जो ग्रहण करती है वह औत्पातिकी बुद्धि है। यह बुद्धि शास्त्राभ्यास से खास सम्बन्ध नही रखती। तात्कालिक दिमाग से ही इसका उत्पात होता है।

दृष्टान्त यथा

रोहक— उज्जयिनी नगरी के पास एक नटो का गाँव था। यहा भरत नाम का नट रहता था। उसके पुत्र का नाम रोहक था वह अद्भुत औत्पातिकीबुद्धि का धनी था। बचपन मे ही उसकी माता मर गई। बाप ने दुबारा शादी की। नई माता रोहक को दु ख देने लगी। रोहक ने उससे बहुत कुछ कहा, लेकिन वह नही मानी। रोहक एक दिन चादनी रात मे बाप के साथ सो रहा था। अपनी नई माँ को शिक्षा देने के लिए वह अचानक चिल्ला कर बोला- पिताजी !- पिताजी ! देखिए, अपने घर से एक आदमी निकल कर जा रहा है। पिता उठकर देखने लगा, लेकिन कोई नजर नही आया। रोहक ने कहा– वह तो उधर गली मे भाग गया। भरत नट के मन मे अपनी स्त्री के प्रति सन्देह हो गया कि यह व्यभिचारिणी है अन्यथा रात के समय घर से आदमी क्यो निकलता ! बस, उसने रुष्ट होकर स्त्री से बोलना भी बन्द कर दिया। वह आकर रोहक से पैरो पड कर माफी मागने लगी। रोहक ने कहा– अच्छा ! कर दूगा पिताजी को आज ही प्रसन्न।

उस दिन की तरह रात को पुनः चिल्लाकर कहने लगा- पिताजी ! वह जा रहा अपने घर से निकल कर उस दिन वाला आदमी देखिये ! पिता ने चौक कर पूछा– कहा है बेटा ! वह आदमी ? रोहक स्वयं उठ कर दौडने लगा और अपनी छाया की तरफ अंगुली करके कहने लगा– यह दौड रहा काला-काला मेरे आगे-आगे। पिता ने कहा– यह तो तेरी छाया है,

है। उसका एक सिरा अपराधी की बाह से जोड दिया जाता हैं। झूठ बोलते ही खून के दवाव मे परिवर्तन हो जाता है एव निर्णायक को पता लग जाता है कि अव यह झूठ वोल रहा है।

गजव की गोलिया— अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने ऐसी गोलिया वनाई हैं, जो तीन-चार चूस लेने पर भोजन की आवश्यकता नही रहती[1]।

प्लास्टिक की थैली मे वच्चा—उपयुक्त सभी बातो मे भी औत्पातिकी वुद्धि का अद्भुत उदाहरण कांच की पेटी मे रखी हुई- प्लास्टिक की थैली मे वच्चे को पैदा करना है, जो केनेडा के एक फ्रासीसी डाक्टर **प्रोफेसर गेगनान** ने १६ फरवरी सन् १९४५ को शाम के ६ वजे अपनी प्रयोगशाला मे किया। उन्ही की अनुमति से १५ अगस्त १९५३ **मिलाप** नाम के दैनिक उर्दू समाचारपत्र ने वच्चा पैदा होने की आश्चर्यजनक घटना जब प्रकाशित की, उस समय वह बच्चा ७ साल का था। धर्मगुरुओ (पादरियो) की मनाही होने के कारण जो बात अब तक गुप्त रखी गई थी, वह मिलाप के अनुसार इस प्रकार है—

दिमाग लडाते-लडाते प्रोफेसर गेगनान के यह बात समझ मे आगई कि रज-वीर्य के जीवित कीटाणुओ को एकत्रित करके यदि एक प्लास्टिक की थैली मे रखा जाय और उपयुक्त खुराक दी जाय तो उनसे स्त्री के उदर की तरह वच्चा पैदा हो सकता है। लेकिन स्त्री के खून मे वच्चा वनने योग्य कीटाणु मास मे एक ही वार उत्पन्न होते हैं और अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण उनका पता लगाना एव उन्हें जीवित निकालना बहुत कठिन कार्य था।

डाक्टर गेगनान ने अपनी दिमागी ताकत से एक बिजली का यन्त्र वनाकर उसे अपनी स्त्री की कमर पर वाध दिया। खून मे कीटाणु पैदा होते ही विजली का रग वदल गया। डाक्टर ने फौरन एक दूसरे यन्त्र द्वारा

---

(१) विज्ञान के नये आविष्कार नाम की पुस्तक के आधार से

थैली पारदर्शी होने के कारण बच्चे की नशें आदि सव चीजें अच्छी तरह दीख रही थी। डाक्टर ने विजली के यन्त्र के साथ एक तराजू भी लगा रखा था, जिससे समय-समय पर बच्चे का अपने आप वजन होता रहता था। एक यन्त्र ऐसा भी लगा रखा था जो बच्चे का वजन जरूरत से अधिक या कम हो जाने पर खून की सप्लाइ मे कमी-बेसी करता रहता था ताकि बच्चा नियमित रूप से रह सके।

चौथे महीने के बाद बच्चा कुछ हल-चल करने लगता है एव कभी-कभी उसका गला नाडी मे उलझ जाने से वह मरने की स्थिति मे पहुच जाता है अत. उसकी हालत ध्यान में रखने के लिए डाक्टर ने तीन अलार्म लगा रखे थे, जो समय–समय पर स्वय सूचना देते रहते थे। तथा इधर एक ऐसे यन्त्र से सम्बन्धित फिल्म लगा रखी थी जिस पर घटे-घटे के बाद अपने आप बच्चे की तस्वीर उतरती जाती थी। यह क्रम भी सदा चालू रहा। प्रतिघटे एक तस्वीर के हिसाब से नव मास मे ६४८० तस्वीरें हुईं। फिर वह फिल्म सिनेमा में लोगो को दिखाई गई एवं दर्शको ने अत्यन्त आश्चर्य का अनुभव किया।

नवमास से एक सप्ताह पहले डाक्टर ने अपनी स्त्री के Estrogen B का एक इंजेक्शन दे दिया जिससे उसके स्तनो मे दूध आ गया। इधर थैली फूलकर तरबूज़ के बराबर हो गई, तब डाक्टर गेगनान ने अपनी स्त्री की सहायता मे उसे चीर कर बच्चे को बाहर निकाला और उसका नाला काटा। फिर साफ करके उसे अपनी स्त्री की गोद मे रख दिया। उसने फौरन बच्चे को अपने स्तनो का दूध पिला दिया, अस्तु। विशेप स्पष्टता के लिए देखिए आगे का चित्र—
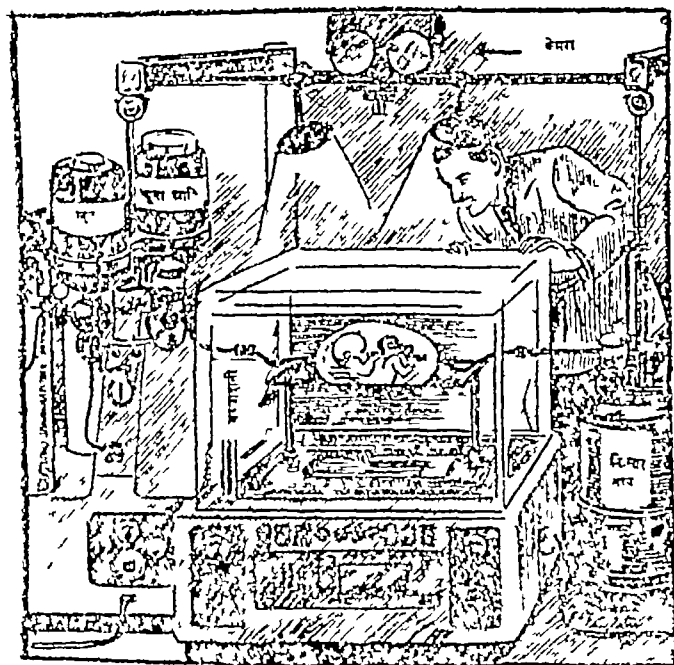
२. वैनयिकीबुद्धि

गुरुजनो के विनय एव सेवा-शुश्रूषा करने से जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह वैनयिकी कहलाती है। यह बुद्धि कठिन से कठिन उलझन को सुलझा देती है। धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग को बताने वाले सूत्र एव अर्थ का सार ग्रहण करती है तथा इहलोक-परलोक मे सफल होती है[1]।

दृष्टान्त यथा— एक गुरु के पास दो शिष्य ज्योतिष पढते थे। पहला गुरु की हरएक शिक्षा विनय से लेता था और दूसरा उद्दण्डता से। एक दिन दोनो कार्यवश कही जा रहे थे। मार्ग मे बडे-बडे पदचिन्ह

(१) नन्दी सू० २६ गाथा ७४ तथा उसकी टीका के आधार से

देखकर अविनीत ने कहा— हाथी गया है। कुछ समय सोचकर विनीत बोला— हाथी नहीं हस्तिनी है। वह एक आँख से कानी है, ऊपर चढी हुई राजा की रानी है, वह सगर्भा है और उसके अभी पुत्र का जन्म होने वाला है।

अविनीत सुनकर चिढ गया और बोला— क्यो करता है व्यर्थ बकवास, रहने दे इस सर्वज्ञता के ढोग को! विनीत शान्ति से सुनता रहा और ज्योही वे शहर के पास पहुचे उन्हे बधाई का गुड मिला। पूछने पर पता लगा कि महारानीसाहेबा अभी-अभी बाहर से आई थी एव उनके पुत्र का जन्म हुआ है।

आगे चलकर दोनो भाई तालाव की पाल पर बैठे। पानी भरकर एक बुढिया आई। इन्हे विद्वान जानकर पूछा कि मेरा पुत्र प्रदेश से धन कमा कर कब आयेगा? प्रश्न करने के साथ ही बुढिया का घडा सिर से गिर गया। यह देखकर अवनीत ने कहा— तेरा बेटा मर गया। बुढिया क्रुद्ध होकर कुछ कह ही रही थी, इतने मे विनीत बोला–माई जा! जा! तेरा पुत्र मानन्द घर आया बैठा है एव खूब धन-माल कमा कर लाया है। बुढिया खुश-खुश घर आई, पुत्र मिला। पडित को घर बुलाकर खाना खिलाया और दक्षिणा दी।

कार्य करके दोनो गुरु के निकट आए। विनीत ने गुरुचरणो मे नमस्कार किया एव अविनीत ने आते ही गुरु पर आक्षेप करते हुए कहा– तुम पक्षपात करते हो, असली ज्ञान इसे देते हो, मुझे नही देते। देखो! मेरी सारी बातें झूठी निकली और इसकी सच्ची निकली। सारा हाल सुनाने पर गुरु ने अविनीत से पूछा– बोल तूने हाथी का पैर कैसे कहा? उसने कहा— बडा पैर हाथी का ही होता है। फिर विनीत से पूछा, वह बोला— गुरुदेव! लघुशका पैर के साथ देखकर मैंने हथिनी जानी, सडक के दोनो तरफ वृक्ष होने पर भी मात्र एक ही

ओर मे खाए हुए थे अत एक आँख से कानी जानी, एक वृक्ष पर बहुमूल्य रंगीन वस्त्र का टुकडा (जो कांटो मे फस कर फटा हुआ था) देखकर राजा की रानी जानी, लघुशका करके उठते समय वह दाहिने हाथ पर अधिक जोर लगाकर उठी थी अत. उसे गर्भवती और पुत्रवती जाना तथा हाथ की रेखाओ की विस्तीर्णता से शीघ्र ही पुत्र होगा ऐसे जाना।

फिर बुढिया वाली बात के विषय मे अविनीत ने कहा कि प्रश्न करते ही उसका घडा फूट गया अत मैंने पुत्र का मरना कह दिया। विनीत ने कहा—गुरुदेव! मैंने लग्न लेकर, ग्रहो का विचार किया। वे बहुत अच्छे थे। घडे की मिट्टी मिट्टी मे मिल गई और पानी तालाब के पानी से मिल गया। इसलिए मैंने पुत्र का मिलना कहा।

गुरु बोले—अरे अविनीत! बोल ये बातें मैंने कब पढाई थी, किन्तु यह विनीत है और तू अविनीत है अत इसकी बुद्धि सन्मार्ग मे एवं तेरी बुद्धि उन्मार्ग मे दौडती है, अस्तु! यह वैनयिकीबुद्धि का उदाहरण हुआ।

३. कार्मिकीबुद्धि

निरन्तर किसी एक काम को करते रहने से जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह कार्मिकीबुद्धि है जैसे.—

सुनार—सोने के आभूषणो को हाथ मे लेते ही जान लेता है कि इसमे कितना सोना है और कितनी खाद है।

तन्तुवाय—कपडा बुनने वाला सूत को हाथ मे लेते ही कह देता है कि इस सूत से इतने गज़ कपडा बनेगा।

वर्द्धकि—सुथार बिना मापे ही रथ मे लगने वाली लकडी का प्रमाण जान लेता है।

हलवाई—बिना तोले घी-चीनी-आटे से ही बढिया मिठाई बना देता है, ऐसे ही रसोईदार रसोई भी।

कुम्हार– बिना वज़न किए ही मिट्टी के पिण्ड को लेकर दबा-दब घड़ा बनाता जाता है, फिर भी प्राय: घडे बराबर ही बनते हैं ।

मणिकार– अपने अभ्यास से मोती को आकाश मे उछाल कर नीचे युक्ति से रखे हुए सूअर के बाल मे उसे इस प्रकार धरता है कि वह मोती बाल मे पिरो लिया जाता है ।

तुन्नाग– अपने कला-कौशल से वस्त्र को इस प्रकार रफू करता है कि हर एक को उसका पता तक नही लग सकता ।

चित्रकार– चित्र की भूमि को बिना मापे ही चित्र के प्रमाण को जान लेता है और कूची मे उतना ही रंग लेता है जितने का उसे प्रयोजन होता है ।

उपर्युक्त उदाहरण कार्मिकीबुद्धि को समझाने के लिये दिये गये हैं[1] । तत्त्व यह है कि ध्यानपूर्वक काम करने से बुद्धि प्राय बढ ही जाती है ।

४. पारिणामिकीबुद्धि

लम्बे अरसे तक पूर्वापर पदार्थों को देखने आदि से परिणत होने वाली बुद्धि पारिणामिकी कहलाती है । पारिणामिकी अर्थात् वयोवृद्ध व्यक्ति को बहुत काल तक ससार के अनुभव से उत्पन्न होने वाली बुद्धि ।

दृष्टान्त यथा– कुछ तरुण सेवको ने राजा से प्रार्थना की । राजन् ! पके हुए केश वाले और जीर्ण शरीर वाले वूढो को न रख कर यदि आप नवयुवको को सेवा मे रखें तो सम्भव है राज्य शीघ्रातिशीघ्र उन्नत हो सके । अच्छा सोचेंगे ! ऐसे कह कर राजा ने कुछ दिनो बाद सभा मे ऐसा प्रश्न किया– युवको एव वृद्धो ! कहिए– यदि कोई मेरे शिर मे लात

---

(१) नन्दी सूत्र २६ गाथा ७७ की टीका के आधार से

मारे तो उसे क्या दण्ड देना चाहिए ? युवकों ने तत्काल जवाब दिया कि उसको उसी क्षण मार देना चाहिए।

राजा ने वृद्धो की ओर देखा। उन्होंने कहा– कुछ सोच-विचार कर कहेंगे। एकान्त स्थान मे बैठ कर अनुभवी वृद्धो ने विचारा कि महारानी के सिवा राजा के शिर मे लात मार ही कौन सकता है ? यह प्रश्न राजा ने हमारा बुद्धिबल देखने के लिये किया है, अस्तु ! ऐसे विचार-विमर्श करके उन्होंने राजसभा मे आकर कहा– महाराज ! हमारी समझ मे तो यही आता है कि आपके शिर मे लात मारने वाले का आपको खूब सम्मान करना चाहिए। राजा प्रसन्न हुआ एव वृद्धो की पारिणामिकी बुद्धि की प्रशंसा करके उन्हें ऊंचे पदो पर नियुक्त किया [1]।

इन चारो बुद्धियो का यदि धर्म मे उपयोग किया जाय तो आत्म-कल्याण होता है और पाप के कार्यों मे उपयोग किया जाय तो आत्मा का पतन भी हो सकता है।

प्रश्न १९—चारों बुद्धियो के अर्थ एवं उदाहरण तो हो गये। अब श्रुतनिश्रितमतिज्ञान समझाइये ?

उत्तर — श्रुतनिश्रित अर्थात् शब्द व संकेत की सहायता से उत्पन्न होने वाला मतिज्ञान चार प्रकार का होता है– अवग्रह १ ईहा २ अवाय ३ धारणा ४। ये चारो पाच इन्द्रियां और एक मन– इन छहो के साथ पृथक्-पृथक् सम्बन्ध करने से छः छः प्रकार के हो जाते हैं।

जैसे– श्रोतेन्द्रिय– अवग्रह १ चक्षुरिन्द्रिय– अवग्रह २ घ्राणेन्द्रिय-अवग्रह ३ रसनेन्द्रिय– अवग्रह ४ स्पर्शनेन्द्रिय– अवग्रह ५ मनः अवग्रह ६। अवग्रहो की तरह ६ प्रकार की ईहा, छः प्रकार का अवाय और छः प्रकार की धारणा। यो सब मिल कर श्रुतनिश्रितमतिज्ञान के चौबीस भेद

(१) नन्दी सू० २६ गाथा ८१ की टीका के आधार से

हुए और चार भेद व्यञ्जनावग्रह के मिलाने से अट्ठाईस भेद हो गए।

प्रश्न १६—व्यन्जनावग्रह के चार भेद कौन से हैं ?

उत्तर—अवग्रह दो प्रकार का होता है[1] अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। उपकरण-इन्द्रिय के साथ शब्द आदि के पुद्गलो का जो सयोग होता है उसे **व्यन्जन** कहते हैं। सयोग होकर जो सर्वप्रथम अव्यक्त-ज्ञान होता है उसे व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। इसको असख्य समय लगते हैं। जैसे[2]—कोरे सिकोरे मे पानी की बूद डालते ही सूख जाती है। फिर डालते-डालते जब वह सिकोरा गीला हो जाता है यावत् पानी मे भर जाता है तब पानी उससे बाहर निकलने लगता है। इसी तरह सुप्त-पुरुष के कानो मे शब्द के अनन्तपुद्गल गिराते-गिराते जब व्यञ्जन अर्थात् कर्णेन्द्रिय के साथ शब्द के पुद्गलो का सम्बन्ध पूर्ण हो जाता है यानी कान शब्द-पुद्गलो से भर जाते हैं तब वह हुँ कहता है। हुँ कहने से पहले वह ज्ञान इतना अपुष्ट होता है कि स्वयं श्रोता भी उसे नही समझ पाता।

ज्ञान की पुष्टि होते-होते जब **यह शब्द** है ऐसा प्रतिभास होने लगता है तब उस व्यञ्जनावग्रह को अर्थावग्रह कहते हैं। अर्थ नाम वस्तु का है और अवग्रह नाम ग्रहण करने का है। अर्थावग्रह यानी वस्तु को सामान्यरूप से ग्रहण करना।

अर्थावग्रह पाच इन्द्रियां और एक मन इन छहो का होता है, किन्तु व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मन का नही होता (क्योकि ये दोनो दूर से ही पदार्थ का ज्ञान कर लेते हैं) शेष चार इन्द्रियो का ही होता है अत व्यञ्जनावग्रह के चार भेद होते है[3] एव अर्थावग्रह-ईहा-

---

(१) नन्दी सू० २७

(२) नन्दी सू० ३५ के आधार पर

(३) नन्दी सूत्र २८

अवाय–धारणा के छ–छ भेद होते हैं।

प्रश्न १७—अवग्रह–ईहा आदि का विवेचन कीजिये ?

उत्तर — पाच इन्द्रियाँ और मन के सहारे से होने वाले अव-ग्रहादि का उदाहरणयुक्त–विवेचन इस प्रकार है।

नाम-जाति आदि की विशेष कल्पना से रहित वस्तु का सामान्य-ज्ञान अवग्रह है।

अवग्रह के द्वारा ग्रहण किए हुए सामान्यविषय को विशेषरूप से निश्चित करने के लिए जो विचारणा-सम्भावना होती है उसका नाम ईहा है।

ईहा से जाने हुए विशेषविषय का कुछ अधिक एकाग्रता से जो निश्चय होता हे उसे अवाय तथा अपोह कहते हैं। अवाय अर्थात् निश्चय।

अवायरूप–निश्चय कुछ समय तक कायम रहता है। फिर विषयान्तर मे मन चला जाने से वह लुप्त हो जाता है, किन्तु ऐसा सस्कार डाल जाता है जिससे आगे कोई योग्य निमित्त मिलते ही उस निश्चित-विषय का स्मरण हो आता है। इस निश्चय की सतत धारा, तज्जन्य-संस्कार और सस्कारजन्यस्मरण– यह सब मतिव्यापार धारणा है। विशेष स्पष्टता के लिए अवग्रह आदि सभी के उदाहरण नीचे पढिये :—

१. श्रोत्रेन्द्रिय से सम्बन्धित अवग्रहादि— कानो मे कोई शब्द पडा और उससे अव्यक्त-ज्ञान हुआ यह व्यञ्जनावग्रह। फिर कोई शब्द है ऐसा सामान्यज्ञान हुआ यह अर्थावग्रह। शब्द शङ्ख का है या वीणा का, यह संशय। वीणा का होना चाहिए क्योंकि शङ्ख का शब्द इतना मीठा नही होता ऐसा विचार करना ईहा। फिर कुछ चिन्तन के बाद शब्द वीणा का ही है ऐसा निश्चय होना अवाय तथा ऐसा मीठा शब्द वीणा का ही होता है यो सदा के लिये ध्यान मे रखना धारणा।

२ चक्षुरिन्द्रिय से सम्बन्धित अवग्रहादि :—

खेत की तरफ दृष्टि पडी एव कोई खडा है ऐसा सामान्य-ज्ञान हुआ यह अर्थावग्रह। (इसका व्यञ्जनावग्रह नही होता क्योकि रूप के पुद्गल चक्षु के अन्दर प्रविष्ट नही होते) चञ्चुपुरुष है[1] या आदमी, यह सशय। चञ्चुपुरुष होना चाहिए, आदमी होता तो इसके शिर पर काक आदि पक्षी कैसे बैठे होते, ऐसे विचारना ईहा। चञ्चुपुरुष ही है, यह अवाय एव उक्त निश्चय को भविष्य मे याद रखना धारणा है।

३. घ्राणेन्द्रिय से सम्बन्धित अवग्रहादि :—

नाक मे गन्ध के पुद्गल पडे और उनसे अव्यक्तज्ञान हुआ, यह व्यञ्जनावग्रह। फिर कुछ गन्ध आ रही है ऐसा सामान्यज्ञान हुआ यह अर्थावग्रह। सुगन्धि है या दुर्गन्धि, यह सशय। सुगन्धि होनी चाहिए क्योकि इसे सूघकर मन मे प्रसन्नता होती है, यह ईहा। सुगन्धि ही है, यह अवाय तथा इस सुगन्धि का स्मृति मे रहना धारणा।

४ रसनेन्द्रिय से सम्बन्धित अवग्रहादि :—

रस के पुद्गल जीभ पर लगने से अव्यक्तज्ञान होना व्यञ्जनावग्रह, कोई रस है ऐसे सोचना अर्थावग्रह। रस नीबू का है या आम का, यह सशय। खट-मीठा होने से आम का होना चाहिए, यह ईहा। आम का ही है, यह अवाय। इसे भविष्य मे याद रखना धारणा।

५ स्पर्शनेन्द्रिय से सम्बन्धित अवग्रहादि :—

अन्धकार मे चलते समय किसी वस्तु का स्पर्श होने से अव्यक्त-ज्ञान होना व्यञ्जनावग्रह, कुछ लगा ऐसा सामान्यज्ञान अर्थावग्रह।

---

(१) क्षेत्र की रक्षा के लिये पुरुष का वेष पहनाया हुआ लकडा चञ्चुपुरुष कहलाता है।

रस्सी है या साप, यह संशय। रस्सी होनी चाहिए, साप होता तो फुफकार अवश्य करता, ऐसा चिन्तन 'ईहा'। रस्सी ही है, यह अवाय। लम्बे समय तक इसे धार कर रखना धारणा।

६. मन से सम्बन्धित अवग्रहादि :—

किसी व्यक्ति ने अव्यक्त स्वप्न देखा और सोचा, मुझे कोई स्वप्न आया यह अर्थावग्रह। (मन का व्यञ्जनावग्रह नही होता) स्वप्न शुभ है या अशुभ, यह संशय। स्वप्नशास्त्र के अनुसार शुभ होना चाहिए, यो विचार करना ईहा। शुभ ही है ऐसा निश्चय अवाय और भविष्य मे इसका कायम रहना धारणा।

व्यञ्जनावग्रह का कालमान असंख्य-समय है। अर्थावग्रह का एक समय है। ईहा-अवाय का अन्तर्मुहूर्त है और धारणा संख्यात-असंख्यातकाल तक भी रह सकती है[1]।

किसी अपेक्षा-विशेष से अर्थावग्रहादि दो प्रकार के भी माने गए है—नैश्चयिक और व्यावहारिक। हम अभी ऊपर जो वर्णन करके आये है वह व्यावहारिक-अर्थावग्रह आदि का है।

प्रश्न १८—नैश्चयिक अर्थावग्रह आदि कब होते है?

उत्तर— व्यञ्जनावग्रह होने के बाद नैश्चयिक अर्थावग्रहादि होते है। वे केवल सामान्य को ग्रहण करते है। जैसे—कान मे शब्द पडते ही वस्तु है यह ज्ञान होना नैश्चयिकअवग्रह। शब्द है या रूप-रस-गंध-स्पर्श यह भ्रम होना संशय। कान का विषय है अत शब्द होना चाहिए, यह ईहा। शब्द ही है यह अवाय और जो कान का विषय होता है वह शब्द ही होता है, यह सदा के लिये मनमे धार लेना धारणा। यो नैश्चयिक कार्यक्रम पूर्ण होने के बाद फिर व्यावहारिक-अर्थावग्रहादि शुरू होते है। जैसे— शब्द है, वीणा का होना चाहिए, वीणा का ही है आदि-आदि पीछे

(१) नन्दी सू० ३४

वतला दिये गये हैं। नैश्चयिककार्यक्रम सामान्यरूप है इसलिए हम लोग उस पर खास ध्यान नही देते, किन्तु होता अवश्य है। हमे इस बात को नही भूलना चाहिए कि जो नैश्चयिक धारणा है वही व्यावहारिक-अर्थावग्रह है। अवग्रह और ईहा के अन्तरकाल मे सशय होता ही है, लेकिन भ्रमरूप होने से उसे ज्ञान का भेद नही माना जाता, अस्तु! श्रुतनिश्रत-मतिज्ञान के अट्ठाईस भेदो का विवेचन तो हो गया[1] किन्तु विशेष स्पष्टता के लिये नीचे का कोष्ठक भी देख लीजिये—

	व्यञ्जनावग्रह	अर्थावग्रह	ईहा	अवाय	धारणा	
(१) स्पर्शन	,,	,,	,,	,,	,,	५
(२) रसन	,,	,,	,,	,,	,,	५
(३) घ्राण	,,	,,	,,	,,	,,	५
(४) चक्षु	×	,,	,,	,,	,,	४
(५) श्रोत	व्यञ्जनावग्रह	,,	,,	,,	,,	५
(६) मन	×	,,	,,	,,	,,	४

(१) कई व्यञ्जनावग्रह के अलग भेद न करके श्रुतनिश्रितमतिज्ञान के २४ भेद मानते हैं एव अश्रुतनिश्रितमतिज्ञान के चार भेद यानी चार बुद्धियों को मिलाकर मतिज्ञान के २८ भेद करते हैं (विशेषावश्यकभाष्य-वृत्ति)

प्रश्न १६— मतिज्ञान के ३३६ भेद भी सुनने में आते हैं वे कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—पाच इन्द्रिया और एक मन—इन छहो साधनो से

होने वाले मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा आदि जो अट्ठाईस भेद कहे हैं वे क्षयोपशम और विषय की विविधता से बारह-बारह प्रकार के होते हैं[1]। अत अट्ठाईस को बारह से गुनने पर तीनसो छत्तीस की सख्या बन जाती है। देखिए कोष्टक—

(१) बहुग्राही	४ व्यञ्जनावग्रह	६ अर्थावग्रह	६ ईहा	६ अवाय	६ धारणा	२८
(२) अल्पग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(३) बहुविधग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(४) एकविधग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(५) क्षिप्रग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(६) अक्षिप्रग्राही	,,	,,	,,	,	,,	,,
(७) निश्रितग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(८) अनिश्रित-ग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(९) संदिग्धग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(१०) असंदिग्ध-ग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(११) ध्रुवग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(१२) अध्रुवग्राही	,,	,,	,,	,,	,,	,,

(१) स्था० ६ सू० २१०

विवेचन नीचे पढ़िये —

(१) बहुग्राही
(२) अल्पग्राही } बहु का मतलब अनेक और अल्प का मतलब एक है। जैसे— दो या दो से अधिक पुस्तक, पात्र या वस्त्रो को जानने वाले अवग्रह, ईहा आदि चारो क्रमभावी-मतिज्ञान बहुग्राहीअवग्रह, बहुग्राहिणीईहा, बहुग्राहीअवाय और बहुग्राहिणीधारणा कहलाते हैं तथा एक पुस्तक, पात्र या वस्त्र को जानने वाले अल्पग्राहीअवग्रह, अल्पग्राहिणीईहा, अल्पग्राहीअवाय और अल्पग्राहिणीधारणा कहलाते हैं।

(३) बहुविधग्राही
(४) एकविधग्राही } बहुविध का मतलब अनेक प्रकार से है और एकविध का मतलब एक प्रकार से है। जैसे– आकार-प्रकार, रूप-रग या मोटाई आदि मे विविधता रखने वाले वस्त्र-पात्र या पुस्तको को जानने वाले पूर्वोक्त चारो ज्ञान क्रमशः बहुविधग्राहीअवग्रह; बहुविधग्राहिणीईहा, बहुविधग्राहीअवाय तथा बहुविधग्राहिणीधारणा माने जाते हैं और आकार-प्रकार, रूप-रग तथा मोटाई आदि मे एक ही प्रकार के वस्त्र, पात्र या पुस्तको को जानने वाले वे ज्ञान एकविधग्राहीअवग्रह आदि कहे जाते हैं। बहु तथा अल्प का मतलब व्यक्ति की सख्या से है और बहुविध एवं अल्पविध का मतलब प्रकार, किस्म या जाति की सख्या से है।

(५) क्षिप्रग्राही
(६) अक्षिप्रग्राही } शीघ्र जानने वाले चारो मतिज्ञान क्षिप्रग्राही-अवग्रह आदि और विलम्ब से जानने वाले अक्षिप्रग्राहीअवग्रह आदि कहलाते हैं। यह स्पष्ट है कि इन्द्रिय, विषय आदि बाह्यसामग्री बराबर होने पर भी मात्र ज्ञानवरणीयकर्म के क्षयोपशम की पटुता और

मन्दता के कारण एक मनुष्य उस विषय का ज्ञान जल्दी कर लेता है और दूसरा देरी से कर पाता है।

(७) निश्रितग्राही
(८) अनिश्रितग्राही } निश्रित का मतलब लिंग-प्रमित अर्थात् हेतु द्वारा सिद्ध वस्तु से है और अनिश्रित का मतलब लिंगअप्रमित-हेतु द्वारा असिद्ध वस्तु से है। जैसे—पूर्वकाल मे अनुभूत शीत, कोमल और स्निग्ध-स्पर्शरूप जुई के फूलो को जानने वाले उक्त चारो ज्ञान क्रम से निश्रित-ग्राही (सलिंगग्राही) अवग्रह आदि, और उक्त लिंग के विना ही उन फूलो को जानने वाले अनिश्रितग्राहीअवग्रह आदि कहलाते हैं।

(९) संदिग्धग्राही
(१०) असंदिग्धग्राही } संदिग्ध का मतलब अनिश्चित संदेह सहित से है और असंदिग्ध का मतलब निश्चित-संदेह रहित से है। जैसे— यह गुलाब का फूल है या सेवती का ? (दोनो मिलते-जुलते ही होते है) इस प्रकार विशेष की अनुपलब्धि के समय होने वाले संदेहयुक्त चारो ज्ञान संदिग्धग्राहीअवग्रह आदि कहलाते हैं तथा गुलाब का ही फूल है सेवती का नही, इस प्रकार निश्चित रूप से जानने वाले उक्त चारो ज्ञान असंदिग्धग्राहीअवग्रह आदि कहे जाते हैं।

(११) ध्रुवग्राही
(१२) अध्रुवग्राही } ध्रुव का मतलब अवश्यभावी से है और अध्रुव का मतलब कदाचिद्भावी से है। यह देखा गया है कि इन्द्रिय और विषय का सम्बन्ध तथा मनोयोगरूप सामग्री समान होने पर भी एक मनुष्य उस विषय को अवश्य जान लेता है और दूसरा उसे कभी जान पाता है एवं कभी नही भी जान पाता। सामग्री होने पर विषय को अवश्य जानने वाले उक्त चारो ज्ञान ध्रुवग्राहीअवग्रह आदि कहलाते हैं तथा सामग्री होने पर भी क्षयोपशम की मन्दता के कारण विषय को कभी

ग्रहण करने वाले और कभी नही ग्रहण करने वाले उक्त चारो ज्ञान अध्रुवग्राही अवग्रह आदि कहलाते हैं।

उक्त बारह भेदो मे से बहु, अल्प, बहुविध व अल्पविध ये चार भेद तो विषय की विविधता पर अवलम्बित हैं और शेष आठ भेद ज्ञानवरणीयकर्म के क्षयोपशम की पटुता एव मन्दता की विविधता पर अवलम्बित हैं। मतिज्ञान के जो अट्ठाईस तथा तीन-सौ छत्तीस भेद यहा दिखलाए हैं ये स्थूल दृष्टि से है, वास्तविक रूप मे देखा जाय तो प्रकाश आदि की स्फुटता- अस्फुटता, विषयो की विविधता और क्षयोपशम की विचित्रता के आधार पर तर-तमभाव वाले असख्य भेद हो सकते है।

प्रश्न २०— पूर्वोक्त अवग्रह आदि क्रम से ही होते हैं या आगे-पीछे भी हो सकते हैं ?

उत्तर — आगे-पीछे नही हो सकते, क्रम से ही होते हैं अर्थात् अवग्रह के बिना ईहा नही होती, ईहा के बिना अवाय नही होता और अवाय के बिना धारणा नही होती। धारणा से पहले तीन अवश्य होगे, अवाय से पहले दो अवश्य होगे और ईहा से पहले एक अवग्रह अवश्य होगा। उक्त क्रम अपूर्ण तो हो सकता है। जैसे- किसी ने दूर से एक चीज देखी, अव यदि वह **यह क्या है** आदि-आदि जानने का प्रयत्न न करे तो उसके ईहा आदि नही होते, मात्र अवग्रह होकर रह जाता है। इसी तरह कोई **यह मनुष्य होना चाहिए** इतना-सा सोचकर रह जाय तो उसके अवग्रह-ईहा होकर रह जाते हैं पर अवाय आदि नही होते तथा **यह मनुष्य ही है** ऐसे निश्चय करके यदि कोई प्रयत्न करना छोड दे तो उसके अवग्रह-ईहा-अवाय होकर रह जाते हैं, किन्तु धारणा नही होती। व्यक्ति चाहे कुछ भी चिन्तन करे, क्रम से अवग्रहादि अवश्य होते है। यद्यपि जैसे अपरिचित वस्तु का चिन्तन करते समय अवग्रह आदि होने का अलग-अलग पता लगना है वैसे परिचित वस्तु का विचार

करते समय पता नही लगता, लेकिन वे क्रमानुसार होते जरूर हैं।

प्रश्न २१—अवग्रहादि मात्र पर्याय को जानते हैं या सम्पूर्णद्रव्य को भी?

उत्तर — इन्द्रिय एव मन के निमित्त से होने के कारण अवग्रहादि मुख्यतया पर्याय को ही जानते हैं। द्रव्य को भी वे पर्याय के आधार से ही ग्रहण करते हैं, किन्तु सम्पूर्णद्रव्य को नही जान सकते। जैसे– आम एक द्रव्य है एव उसकी स्पर्श–रस–गन्ध–रूप आदि पर्यायें है। उसे इन्द्रियाँ एव मन अलग-अलग पर्यायो के रूप से जानते हैं। त्वचा मात्र आम के स्पर्श का ज्ञान करती है, जीभ मात्र स्वाद को समझती है, नाक मात्र गन्ध को पहचानती है एव आँखें केवल उसके रूप–रग को जानती है। इसी प्रकार मन भी उस आम के किसी एक पर्याय का ही चिन्तन करता है। कोई भी इन्द्रिय या मन सम्पूर्ण आमरूपद्रव्य को एक साथ नही जान सकते। यद्यपि ज्ञान करने वाला व्यक्ति यही समझता है कि मैं आम के रूप-रस आदि का एक साथ ज्ञान कर रहा हूँ, लेकिन वास्तव मे यह बात नही है। एक–एक पर्याय का ज्ञान करने मे उसे असख्य–असंख्य समय लगते हैं, पर समय की अतिसूक्ष्मता के कारण उस अन्तर को वह समझ नही पाता।

प्रश्न २२—आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान के और क्या-क्या नाम हैं?

उत्तर — ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, सज्ञा, स्मृति, मति, प्रज्ञा ये सभी आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायवाचक नाम हैं[1]। इनमे मति और प्रज्ञा ये दो तो बुद्धि के ही वाचक हैं। बुद्धि का वर्णन पीछे–प्रश्न–१४ मे तथा ईहा–अपोह का वर्णन पीछे प्रश्न १७ मे किया जा चुका है। शेष विमर्श आदि का विवेचन नीचे लिखा है।

---

(१) नन्दी सूत्र २६ तथा तत्त्वार्थ सूत्र अ. १. सू० १३

विमर्श

यह ऐसे ही होना चाहिए, ऐसे ही हुआ था और ऐसे ही होगा। इस प्रकार वस्तु के ठीक-ठीक निर्णय करने को विमर्श कहते हैं।

मार्गणा

जिसके रहने पर किसी एक वस्तु की सत्ता सिद्ध की जा सके उसे अन्वयधर्म कहते हैं और अन्वयधर्म को जान लेना मार्गणा है। जैसे-यहा धुआँ है इसलिये अग्नि अवश्य होनी चाहिए। इस वाक्य मे धुए के रहने से अग्नि का होना सिद्ध होता है।

गवेषणा

जिस वस्तु के रहने पर किसी वस्तु का अभाव सिद्ध किया जा सके उसे व्यतिरेकधर्म कहते हैं। व्यतिरेकधर्म की पर्यालोचना करना गवेषणा है। जैसे- यहा अभी सूर्य है अतः रात्रि का अभाव हैं। इस वाक्य से सूर्य की विद्यमानता मे रात्रि का न होना सिद्ध होता है।

चिन्ता

यह कैसे हुआ ? कैसे होना चाहिए ? एवं कैसे होगा ? इस प्रकार जो विचार किया जाता है उसे चिन्ता या चिन्तन कहते हैं। चिन्तन सकल्प-विकल्प आदि अनेक प्रकार का होता है। जैसे :—

संकल्प :– तन-धन–स्वजन आदि बाह्य पदार्थों पर जो ममत्व किया जाता है वह सकल्प है।

विकल्प .—हर्ष एव विषाद के अवसर पर मैं सुखी हू, मैं दुःखी हू आदि–आदि जो सोचा जाता है वह विकल्प है।

निदान .—भौतिकसुख की प्राप्ति के लिए उत्कट-अभिलाषा या प्रार्थना की जाती है वह निदान–नियाणा है।

प्रत्यभिज्ञान :—पूर्वकाल मे देखी हुई चीज़ को कालान्तर से

जो देखते ही पहचान लिया जाता है वह प्रत्यभिज्ञान है।

कल्पना :—परोक्षविषयों के चित्र को सामने ले आने वाली जो मन की शक्ति है वह कल्पना है। तर्क, अनुमान, अनित्यादि सोलह भावना, क्रोधादि कषाय तथा सभी प्रकार के स्वप्न[1] कल्पना के ही रूप है।

श्रद्धान :—आत्मा की सच्ची या झूठी जो मान्यता–विचार–धारा है वह श्रद्धान है।

लेश्या :—मन के जो शुभ या अशुभ विचार हैं वे लेश्या है।

ध्यान :—अपने लक्ष्य मे मन को जो एकाग्र किया जाता है वह ध्यान है।

उपर्युक्त चिन्तन के प्रकारो मे से तर्क, अनुमान और प्रत्यभि–ज्ञान ये तीनो तो ज्ञानवरणीयकर्म के क्षयोपशमरूप है। संकल्प, विकल्प, निदान, कषाय, कृष्ण–नील–कपोत लेश्या, झूठीश्रद्धा और आर्त–रौद्रध्यान– ये मोहकर्म के उदयरूप हैं। तेज :– पद्म–शुक्ल लेश्या, अनित्यादि १६ भावनाएं और धर्म–शुक्लध्यान– ये नामकर्म के उदय एवं अन्तरायकर्म के क्षय क्षयोपशमरूप हैं तथा सच्चीश्रद्धा मोहकर्म का उपशम–क्षय– क्षयोपशम रूप है।

संज्ञा

संज्ञा दो प्रकार की होती है। एक तो सम्यक्प्रकार से जानने का नाम संज्ञा है। यह ज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से होती है अतः मतिज्ञानरूप है तथा दूसरी जिसके द्वारा आहार आदि का अभिलाषी जीव जाना जाय वह संज्ञा है। उक्त संज्ञा असातवेद–नीय एवं मोहनीयकर्म के उदय से होती है जो आहारादि की प्राप्ति के लिए बुद्धि को विकारयुक्त करके तदनुरूप क्रिया करवाती है।

मतिज्ञानरूपसंज्ञा तीन प्रकार की है– दीर्घकालोपदेशिकी १

---

(१) स्वप्न का वर्णन आगे किया जायगा।

हेतुवादोपदेशिकी २ दृष्टिवादोपदेशिकी ३

पूर्वोक्त ईहा आदि के क्रम से भूत, भविष्य और वर्तमान ऐसे तीनों काल सम्बन्धी (यह करता हू यह करूगा और मैंने यह किया है आदि-आदि रूप) जो विचार किये जाते हैं, उनका नाम दीर्घकालोपदेशिकी संज्ञा है। यह मात्र मन वाले जीवो के होती है।

कई जीव अपने शरीर आदि की रक्षा के लिये इष्ट-छाया, आतप एव आहार आदि की प्राप्तिरूपकार्य मे प्रवृत्त होते है और अनिष्टछाया आदि से निवृत्त होते है। उनका वह इष्टप्रवृत्ति व अनिष्टनिवृत्तिरूप जो ज्ञान है उसे हेतुवादोपदेशिकीसंज्ञा कहते हैं। यह सज्ञा द्वीन्द्रिय आदि जीवो मे भी होती है। यद्यपि उनमे तर्क-वितर्क करने वाला मन नही होता फिर भी चैतन्यशक्तिरूप सूक्ष्ममन का अस्तित्व तो है ही। उसी मन के सहारे वे आहारादि क्रियायो मे प्रवृत्ति करते हैं। इतना कुछ होने पर भी मनःपर्याप्ति नही होने से ये जीव असज्ञी कहलाते है।

क्षायोपशमिकज्ञान वाले सम्यग्दृष्टि जीव का ज्ञान दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा है। यह मिथ्यादृष्टि जीवो मे नही होती। यह ज्ञानरूप सज्ञाओ का वर्णन हुआ। अब असातवेदनीय और मोहनीयकर्म के उदय से बुद्धि को विकारयुक्त करने वाली आहार आदि दस सज्ञाए कहते हैं[1]— आहारसंज्ञा १. भयसज्ञा २ मैथुनसज्ञा ३ पारिग्रहसज्ञा ४. क्रोधसज्ञा ५, मानसज्ञा ६ मायासज्ञा ७. लोभसज्ञा ८. लोकसज्ञा ९ ओघसज्ञा १०। विवेचन इस प्रकार है—

१ आहारसंज्ञा.— कवलादि आहार के लिये पुद्गलो को ग्रहण करने की क्रिया आहारसज्ञा है। यह चार कारणो से

(१) भग० श-७ उ ९, स्था. १०. सू० ७५२, स्था. ४ उ० ४ सू० ३५६ तथा प्रज्ञापना पद ६

उत्पन्न होती है[1]– पेट खाली होने से १ क्षुधावेदनीय के उदय से २ आहार की बात सुनने से और आहार को देखने से ३ निरन्तर आहार का स्मरण करने से ४। तिर्यञ्चों में आहारसंज्ञा अधिक होती है।

२. भयसंज्ञा :– भयभ्रान्त मनुष्य के नेत्र एवं मुँह का विकार, रोमाञ्च व शरीरकम्पन आदि क्रियायें भयसंज्ञा है। यह चार कारणों से उत्पन्न होती है– शक्ति की कमी होने से १ भयमोहनीयकर्म के उदय से २ भय की बात सुनने से व भयानक दृश्य देखने से ३ भय के कारणों का स्मरण करने से ४। नरक के पापियों में भयसंज्ञा अधिक होती है।

३. मैथुनसंज्ञा :– मैथुनार्थ स्त्री आदि के अङ्गों को देखने-छूने वगैरह की इच्छा तथा उससे होने वाली शरीरकम्पन आदि क्रिया मैथुनसंज्ञा है। यह चार कारणों से उत्पन्न होती है–शरीर में रक्त-मांस की अधिक वृद्धि होने से १ वेदमोहनीयकर्म के उदय से २ काम-कथा के श्रवण आदि से ३ मैथुनसम्बन्धि बात को सोचते रहने से ४। मनुष्यों में मैथुनसंज्ञा अधिक होती है।

परिग्रहसंज्ञा – आसक्तिपूर्वक सचित्त-अचित्त किसी भी द्रव्य को ग्रहण करने की लालसा परिग्रहसंज्ञा है। यह चार कारणों से उत्पन्न होती है– असन्तोष से १ लोभमोहनीयकर्म के उदय से २ परिग्रह की बात सुनने से या उसे देखने से ३ परिग्रह का स्मरण करने से ४। देवों में परिग्रह संज्ञा अधिक होती है।

५ क्रोधसंज्ञा :– क्रोध मोहनीय के उदय से होने वाली मुँह सूखना, आँखें लाल होना, होठों का फड़कना आदि-आदि क्रियायें (जिनसे क्रोध का पता लगता है) क्रोधसंज्ञा है।

६. मानसंज्ञा– मान-मोहनीय के उदय से मुँह मरोड़ना, बार

(१) आहारादि संज्ञा उत्पन्न होने के चार-चार कारण-स्था-४ उ-४-सूत्र ३५६ के आधार से है

चढ़ाना, गर्दन को ऊंची करना आदि-आदि जो अहंकार को प्रकट करने वाली क्रियायें होती हैं उनका नाम मानसंज्ञा है।

७. मायासंज्ञा— माया-मोहनीय के उदय से असत्यभाषण करना, तोल-माप मे कमी-बेसी करना, असली चीज़ देखा कर नकली देना आदि-आदि जो कपटपूर्णक्रियाएं की जाती है उन्हे मायासंज्ञा कहते हैं।

८. लोभसंज्ञा— लोभ-मोहनीय के उदय से धन-धान्यादि पदार्थों की प्राप्ति के लिए मन मे जो तीव्र-अभिलाषा रहती है, वह लोभसंज्ञा कहलाती है। क्रोधादि संज्ञायें उत्पन्न होने के चार कारण माने गये हैं[1]— क्षेत्र-अपने-अपने उत्पत्तिस्थान १ वस्तु सचित्त, अचित्त, मिश्र किसी भी प्रकार की सम्पत्ति २ शरीर ३ और उपकरण ४। मतलब यह है कि क्षेत्र, वस्तु, शरीर और उपकरण—ये चार चीज़ें ही जगत मे क्रोधादि को उत्पन्न करने वाली हैं। जैसे—अपने क्षेत्र आदि को यदि कोई लेना चाहे तो उसके प्रति क्रोध उत्पन्न होता है। मेरे क्षेत्र आदि सर्वश्रेष्ठ है, ऐसे मन में अभिमान होता है। क्षेत्रादि की रक्षा के लिए अनेक प्रपञ्च रचे जाते हैं, यह माया है और अपने क्षेत्रादि पर ममत्व रहता है यह लोभ है।

९. लोकसंज्ञा— स्वच्छन्दता से घडी हुई नाना प्रकार की लौकिककल्पनाएं जिनको अज्ञानी लोग आम तौर पर मानते हैं, उन्हें लोकसंज्ञा कहते हैं[2]। जैसे निःसन्तान की गति नही होती, कुत्ते यक्षरूप हैं, ब्राह्मण देवता है, काक पितामह-पितर हैं आदि-आदि। मोक्षाभिलाषी जीवों को उपर्युक्त अन्धपरम्परा से चलती हुई लोकसंज्ञा मे मोहित नही होना चाहिए। लोकसंज्ञा मिथ्यात्व—मोह के उदय

(१) स्था. ४ उ १ सू० २४६

(२) प्रज्ञापना पद ८ टीका

से उत्पन्न होती है।

१०. ओघसंज्ञा—अनुकरण की प्रवृत्तिरूपज्ञान को तथा अव्यक्तउपयोगरूपज्ञान को ओघसंज्ञा कहते हैं। जैसे वक्ता के भाषण से विशेष आनन्द आने से कुछ एक श्रोता तालो बजाते हैं, उनके साथ-साथ बिना सोचे-समझे हजारों-लाखों आदमी देखा-देखी ताली पीटने लगते हैं। यह अनुकरण-प्रवृत्तिरूप ओघसंज्ञा है। लताएँ जो वृक्ष पर चढ़जाती है, यह उनकी अव्यक्तज्ञानरूप ओघसंज्ञा है[1]। यह संज्ञा का विवेचन हो गया। अब स्मृति का वर्णन करते हैं।

स्मृति

देखे, सुने एवं अनुभूत विषयों का स्मरण होना स्मृति है। यह पूर्वोक्त धारणा के अन्तर्गत है। अवधानविद्या में भी देखे, सुने एवं स्पर्श किये हुये विषयों का कई घंटों के बाद स्मरण किया जाता है अतः यह भी स्मृतिरूप मतिज्ञान ही है।

प्रश्न २६—सबकी स्मरणशक्ति एक-सी क्यों नहीं होती ?

उत्तर—जिस व्यक्ति के स्मृतिरूप—मतिज्ञानावरणीयकर्म का जितना न्यून या अधिक क्षयोपशम होता है उसकी स्मरणशक्ति उतनी ही कम या ज्यादा होती है। यही कारण है कि कई व्यक्ति हर एक चीज को बहुत जल्दी भूल जाते हैं और कई वर्षों तक नहीं भूलते। कहा जाता है कि महाकवि लार्ड बायरन को अन्तिम क्षण तक अपनी सब कविताएँ याद थी।

निबन्धकार लार्ड बेकन स्वलिखित निबन्ध शब्द व शब्द बोल देते थे।

इंगलैंड के प्रसिद्ध इतिहासकार राजनीतिज्ञ लार्ड मेकाले पढ़ी हुई सारी पुस्तक शब्द व शब्द याद कर लेते थे। मिल्टन का पैराडाइज—

(१) प्रज्ञापनावृत्ति में दर्शनरूप—सामान्यउपयोग को ओघसंज्ञा एवं ज्ञानरूप—विशेषउपयोग को लोकसंज्ञा माना है।

लोस्ट जैसा महाकाव्य उन्होने एक रात मे याद कर लिया था ।

अमेरिका के भूतपूर्वराष्ट्रपति थेडोर रूजवेल्ट एक बार मिलने के बाद उस आदमी को नही भूलते थे । एकबार जापान मे पन्द्रह वर्ष बाद उन्हे एक बेंकर अकस्मात् मिले । बस मिलते ही पन्द्रह वर्ष पूर्व के विवाद की चर्चा शुरू करदी ।

अमेरिका के वनस्पति-विशेषज्ञ पच्चीस हजार वनस्पतियो को पहचानते थे।

दक्षिणअफ्रिका के भूतपूर्वप्रधानजनरल स्मटस् को अपनी लायब्रेरी की सब पुस्तको के प्रत्येक शब्द याद थे और वे यह बता सकते थे कि कौन-सी पुस्तक कहाँ है एव उसके कौन-से पृष्ठ पर कौन-सा शब्द है ।

हरदयाल माथुर ने पृथक्–पृथक् चार भाषाओ में एक साथ पढी हुई चार पुस्तकें सुनकर उनका एक–एक शब्द सुना दिया था[१] ।

एकबार वे इगलैण्ड मे किसी के यहा ठहरे हुए थे। वहा पडी हुई एक किताब पढी । फिर उसे लेकर रवाना होने लगे । मालिक ने किताब मागी तब कहा– मेरी है । विवाद बढा । कोर्ट मे गये मजिस्ट्रेट के पूछने पर उन्होंने यह बतला दिया कि अमुक पत्र की अमुक पक्ति पर अमुक शब्द है । मालिक केस हार गया । कोर्ट ने किताब उन्हें देदी । फिर उन्होंने सत्य हकीकत कहकर किताब लौटा दी ।

स्वामीविवेकानन्द विश्वविद्या नामक ग्रन्थ पढ रहे थे । शिष्य ने पूछा– क्या इतना याद रह जायगा ? उन्होने कहा– तू पूछकर देखले । कुतूहलवश शिष्य ने जो भी पूछा, उन्होंने सही–सही बता दिया ।

श्रीजैनश्वेताम्बरतेरापथ के पचम आचार्य श्रीमघराजजी

---

(१) नवभारत ३१ जुलाई १६५५ से सगृहीत

महाराज ने वि सं. १६२२ पालीचातुर्मास मे सारस्वत-व्याकरण का पूर्वार्ध श्रीजयाचार्य को सुनाया था। उसके बाद फिर वि सं १६४८ जयपुर मे पण्डित दुर्गादत्तजी को उसका कुछ अंश अस्खलितरूप से सुना दिया। बीच के छब्बीस वर्षो मे कभी नही दोहराया।

स्थूलिभद्रजी की यक्षा आदि सात बहनें भी अद्भुत स्मरणशक्ति वाली थी। उनमे पहली एकबार सुनकर यावत् सातवी सातबार सुनकर कठिन से कठिन विषय को याद रख लेती थी।

अमेरिका के शिक्षाशास्त्री हेनरी स्टोर्च ने वायोला राजेलिया स्टोलरिच नाम की कन्या जब वह आठ महीना चार दिन की थी, गोद ली। खिलौनों के साथ खेलना सिखाकर उसकी रोने की आदत छुड़वाई। उसे फर्श पर बैठना एव अकेले सोना सिखाया। डेढ़ वर्ष की उम्र मे उसकी खाने-पीने की चीजें एक छोटी-सी अलमारी मे रखदी। भोजन समय के अतिरिक्त जब भी उसे भूख लगती, अलमारी खोलकर वह यथेष्ट चीज खाकर फौरन अलमारी को बन्द कर देती और खेलने लगजाती। वायोला के ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम इतना अद्भुत था कि उसे पढ़ने के लिए कभी विवश नही किया गया। शिक्षाशास्त्री ने शिक्षा-सम्बन्धी व्यवस्थामय एक मनोहर यन्त्र बनाया और उस यन्त्र मे परिवेष्टित करके बालिका को स्वतन्त्रता देदी कि वह सब क्या सीखे।

तेरह मास की आयु मे उसे पहली पुस्तक देकर नाना प्रकार के चित्र दिखलाए एव उनसे सम्बन्धित सरल बाते सुनायी। फलस्वरूप बालिका की रुचि इतनी बढ़ गई कि वह स्वयं पुस्तक ले लेकर उनके पास पढ़ने के लिए आने लगी। पढ़ने के बाद पुस्तक को वह स्वयं जाकर पुस्तकाधार पर रख देती। दो मास के बाद उसे [illegible] दी। इन दोनों पुस्तकों के साथ वह चार मास तक

दिन में दो-दो तीन-तीन घण्टे खेलती रही। पहली पुस्तक काफी फट गई किन्तु दूसरी केवल दो जगह से फटी थी।

सत्रह मास की आयु में वह प्रत्येक अक्षर की एक ध्वनि बता सकती थी। फिर कार्डों पर छापे हुए वाक्यो द्वारा उसने छोटे-छोटे वाक्य पढने सीखे। बीस मास की आयु में वह सभी अङ्क और नौ रंग-सफेद काला एव त्रिपार्श्वकाँच मे दिखाई देने वाले सूर्य की रोशनी के सात रग पहचानने लगी।

इक्कीस मास की आयु में वह रेखागणितसम्बन्धी वर्ग, वृत्त, त्रिभुज आदि चौंतीस आकृतियां जानने लगी। पच्चीस राष्ट्रों के झण्डो को पहचानने लगी एव अमेरिका के सयुक्तराज्यो के प्रदेश, स्टेट और राजधानियों को सकेत से बताने लगी। बाईस मास की आयु मे वह अच्छी और बुरी प्रत्येक प्रकार की विचारधारा को दिखलाने वाले सौ से अधिक चित्रो को जानने लगी।

तेईस मास की आयु मे वह विभिन्नजाति के बत्तीस बीज एव पच्चीस प्रकार के पेडो के पत्तो को पहचानने लगी। नर-कंकाल की प्राय. प्रत्येक अस्थि और शरीर की सभी इन्द्रियो को बताने लगी। रेखागणित मे प्रयुक्त होने वाली बाईस प्रकार की रेखाओं और कोणो को देखने के साथ ही बताने लगी तथा अमेरिका के सयुक्तराज्यो के सभी सिक्को को पहचानने लगी।

तेईस मास और पच्चीस दिन की आयु में उसकी परीक्षा ली गई। उस समय उसे २५००-३००० लगभग सज्ञायुक्त चित्र आदि वस्तुओ के नाम याद थे। परीक्षा दो प्रकार से ली गई-एक तो बहुत-सी वस्तुएं व उनके चित्र उसके सामने रखकर उनमे से एक-एक का नाम लेते गए एव बालिका उन्हे पहचान-पहचान कर बताती गई। दूसरी रीति मे परीक्षक वस्तु या चित्र हाथ मे लेकर उनके नाम पूछते गए और वह दनादन बताती गई।

[illegible] वीं वर्ष की आयु में वायोला को बाईस विरामचिन्हों का ज्ञान होगया। दो वर्ष और ग्यारह मास की आयु में वह अंग्रेजी भाषा के किसी भी पाठ्य विषय को देखते ही प्रभावोत्पादक-उच्चारण के साथ पढ़ने लगी एवं जर्मनभाषा भी। तीन वर्ष और दो मास की आयु में वह अंग्रेजी, जर्मन एवं फ्रेंच ये—तीनों भाषाएँ पढ़ लेती थी। स्कूली रीडरों की 'बाल्डविन पुस्तकमाला' में पहली से लेकर छठी तक कदाचित् एक भी ऐसा शब्द नहीं, जिसे वह नहीं पढ़ सकती हो। साधारण कठिन से कठिन शब्दों का उच्चारण भी बहुत अच्छा कर सकती थी। तीन वर्ष साढ़े तीन मास की आयु में वह समतल-रेखागणित (प्लेनज्यॉमेट्री) में प्रयुक्त होने वाली सब तरह की लकीर, सब प्रकार के त्रिभुज, कोना, वर्ग और त्रिभुजाकार छेदित घनक्षेत्र (प्रिज्म) शुंडाकार स्तम्भ (पिरामिड) शंकु और उनके खंड, घटों के पट्टे और इसी प्रकार की अनेक चीजें चित्रित कर लेती थी। [illegible] तक की संख्या पढ़ लेती थी। फाईल ज्योग्राफी में दिए हुए प्राय प्रत्येक नाम को पढ़ सकती थी और बन्द पुस्तक उसके हाथ में देने पर, कोई भी प्रसिद्ध भौगोलिक नाम और स्थान, उसे मानचित्र कुछ ही सैकिंडों में निकाल देती थी तथा [illegible] के नाम व स्थान बता सकती थी। व [illegible] के नाम और स्थान भी।

सीख गई । तीन वर्ष साढे तीन मास की आयु मे वह प्रति के बिना ही बहुत अच्छी तरह टाइप करने लगी । जनवरी १९५३ मे उक्त बालिका लगभग तीन वर्ष साढे तीन मास की थी[१] ।

मुरादाबाद मे नववर्षीया कन्या कल्पना ने सहकारिता मंत्री श्री चतुर्भुज शर्मा के सामने अद्‌भुत स्मरणशक्ति का परिचय दिया। कन्या को तीन-सौ शास्त्र याद हैं । उसने वेद, उपनिषद्, रामायण, पुराण, श्रीमद्‌भागवत, और गीता के कठिन से कठिन अंश सुनाए । उसके सुनाने का ढंग कुछ निराला ही था । सस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और अरबी — इन सभी भाषाओ को बोलने मे कन्या अद्वितीय है[२] ।

इधर तो हमे उपर्युक्त अद्भुत स्मरणशक्ति वाले पुरुषो के उदाहरण मिलते हैं और इधर ऐसे खाली दिमाग वाले भी प्राप्त होते है जिन्हे सुबह का खाया हुआ शाम तक भी याद नही रहता । शास्त्रो मे भी दो प्रकार के मुनियो का कथन है — एक तो कोष्ठकबुद्धि, जिनके मस्तिष्क मे पडा हुवा ज्ञान सुरक्षित कोठे मे रहे हुए धान्य की तरह सहज मे कभी नष्ट नही होता । दूसरे मासपदिक, जिन्हे धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ऐसे आठ अक्षरो का एक पद बडी मुश्किल से एक मास मे याद हो सकता है । यह सब मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम की विचित्रता का ही कारण है ।

प्रश्न २४— क्या जातिस्मरणज्ञान का भी इसी मे समावेश होता है ?

उत्तर — हा । जातिस्मरणज्ञान भी मतिज्ञान के भेदरूप

(१) कल्याण वर्ष २७, बालक अङ्क पृ – ७५०--७५७ लाला सतराम बी० ए० के लेख के आधार से ।

(२) हिन्दुस्तान ६ जून १९६२ से संगृहीत।

स्मृति का ही एक प्रकार है। इसीका दूसरा नाम जातिस्मृति है। जाति का अर्थ पिछला जन्म है और स्मृति का अर्थ स्मरण है। जातिस्मरण यानि पिछले जन्मों का स्मरण। इसे संज्ञिज्ञान भी कहते हैं।

जातिस्मरण से पिछले नौ जन्मों की बात याद आजाती है[1] लेकिन वे जन्म सारे संज्ञिपञ्चेन्द्रिय के ही होने चाहिए। असंज्ञी का जन्म बीच में आजाने पर यह ज्ञान काम नहीं कर सकता।

जातिस्मरणज्ञान का वर्णन जैनआगमों एवं ग्रन्थों में अनेक जगह प्राप्त होता है। जैसे —

(१) नमिराजा ने जातिस्मरणज्ञान से अपने पूर्वजन्म को देखा एवं वैराग्य पाकर दीक्षा ली[2]।

(२) कपिल ब्राह्मण को जातिस्मरणज्ञान हुआ एवं तत्काल लोच करके उसने दीक्षा ले ली[3]।

(३) ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को जातिस्मरणज्ञान हुआ। उसने अपने पिछले पांच जन्म देखे[4]।

(४) भृगु पुरोहित के पुत्रों को जातिस्मरणज्ञान हुआ एवं उन्होंने वैरागी बनकर संयम लिया[5]।

(५) मुनिदर्शन होने से मृगापुत्र को जातिस्मरणज्ञान हुआ

---

(१) आचाराङ्गवृत्ति व धर्मग्रन्थवृत्ति के अनुसार यह भी कहा जाता है कि जातिस्मरणज्ञान से पिछले संख्यात जन्मों की बातें जानी जा सकती हैं।

(२) उ-अ-९ गा-१-२

(३) उ-अ-८ टीका

(४) उ-अ-१३ गा-१-७

(५) उ-अ-१४ गा-२

एवं वह माता से जबरदस्त ज्ञानचर्चा करके दीक्षित हुआ[1]।

(६) सत्यभूत मुनि का उपदेश सुनने से भामण्डल को जातिस्मरणज्ञान हुआ एवं उसने सीता को अपनी बहन समझा[2]।

(७) जटायु पक्षी को मुनिदर्शन से जातिस्मरणज्ञान हुआ एवं उसने अनेक व्रत-नियम लिए[3]।

वर्त्तमान समय मे भी जातिस्मरणज्ञान के कई उदाहरण मिले है। उनमे से कुछ एक प्रसंग यहा दिये जाते है—

प्रकाशचन्द्र

१४ जुलाई १९६१ के दिन मथुरा से पचीस मील दूर कोसी नाम के गाव मे छाताग्रामनिवासी ब्रजलाल वार्ष्णेय अपने दस वर्ष के पुत्र प्रकाशचन्द्र (जो पूर्व-जन्म मे यहा के भोलानाथजैन का पुत्र निर्मलकुमार था) को लेकर आए। दस हजार की जनता उसे देखने इकट्ठी हुई। बच्चे ने अपनी दुमंजिली दुकान पहचान ली, किन्तु भावीवश भोलानाथ उस दिन दिल्ली गए हुए थे। आने के बाद पता पाकर वे अपनी बडी पुत्री तारा को लेकर अपने पूर्वजन्म के पुत्र निर्मल से मिलने छाता गए। प्रकाशचन्द्र पिता और बहन को पहचान कर रोने लगा। साथ-साथ भोलानाथ और तारा की भी आखे डब-डबा गई। आग्रह करने से ब्रजलाल प्रकाश को लेकर फिर कोशी गए। पूर्वजन्म के पिता ने पुत्र मागा, लेकिन ब्रजलाल ने देने से इन्कार कर दिया। आखिर बच्चे को अच्छी तरह पढाने का आग्रह करके विदाई दी। बच्चे ने पाच वर्ष की उम्र से ही कोसी-कोसी की रटना लगा रखी थी। वह कहा करता था— यहा मूंज के माचे हैं मेरे

---

(१) उ-अ-१९ गा-६

(२) जैनरामायण

(३) जैनरामायण

कोसी के घर में निवार के पलंग है। बच्चा चेचक की बिमारी से मरा था' ।

शान्तिकुमारी

देहली के चीराखाना मुहल्ले मे रहने वाले रंगबहादुर माथुर की कन्या शान्तिकुमारी जब पाँच वर्ष की हुई तभी से कहने लगी कि मैं मथुरा जाऊंगी। मेरे पूर्वजन्म के माता-पिता और पति-ज्येष्ठ आदि मथुरा मे रहते हैं। घरवालो ने उसकी बात पर कुछ ध्यान नही दिया एव पागल-पागल कहकर उसे यो ही टाल दिया, लेकिन लडकी वारम्बार इस बात को दुहराती ही रही।

समय बीतता गया। शान्ति नौ वर्ष की हो गई फिर भी मथुरा को नही भूली, तब यह बात कुछ फैली एवं युक्तप्रान्त के रिटायर्ड प्रिन्सिपल किसनचन्द इस बात का पूरा पता लगाने लडकी के रिस्तेदार मास्टर बिसुनचन्द और एडवोकेट श्री ताराचन्द के साथ उसके घर आए।

पूछने पर शान्ति ने कहा- मैं पूर्वजन्म मे मथुरा के एक चौबे की लडकी थी एव एक चौबे के साथ मेरा विवाह हुआ था। जब लडकी से उसके पति का नाम पूछा गया तब पहले तो वह बहुत शर्मायी, किन्तु आग्रह करने पर प्रिन्सिपल किसनचन्द के कान मे धीरे मे पति का नाम केदारनाथ कहा एव उसके कपडे की दुकान का स्थान भी बताया। प्रिन्सिपल ने केदारनाथ के नाम पर एक पत्र लिखा। कुछ दिनो बाद उसका जबाव आया। उसे पढकर सारे लोग विस्मित हो गए।

कुछ समय पश्चात् पंडित केदारनाथ स्वय, अपने पुत्र, दूसरी स्त्री एव कई मनुष्यो को साथ लेकर दिल्ली आया। शान्ति उसे

---

(१) २३ जुलाई १९६१ नवभारत के आधार से।

देखकर कुछ शर्मायी पर उसने जब अपने पुत्र को देखा; उसका दिल भर आया और गद्गद् स्वर से कहने लगी— मैंने मरते समय इसे सिर्फ दस दिन का छोडा था। यो कहकर पुत्र से मिली, एवं उसे खेलने के लिए गुड्डिया- खिलौने आदि दिये। जब केदारनाथ वापस जाने लगा तब शान्ति ने भी उसके साथ जाना चाहा, किन्तु उसके माता-पिता ने उसको वहाँ भेजना उचित नही समझा।

जब यह समाचार नगरो मे फैला तो बहुत आदमी उसे देखने आए। तीन दिन तक भीड लगी रही। लगभग डेढ़लाख मनुष्यो ने शान्ति के दर्शन किए।

मथुरा की यात्रा

केदारनाथ तो चला गया, लेकिन शान्ति उसे नही भूली। एव बारबार कहती रही कि मुझे मथुरा ले चलो, मैं तुम्हे अपने पति का घर दिखा दूंगी। वह मथुरा के बाजारो, गलियो व द्वारकाधीश के मन्दिर की चर्चा भी काफी किया करती थी। लडकी के ज्ञान की विशेष परीक्षा करने के लिए, एक दिन बीस आदमी लडकी को साथ लेकर मथुरा के लिए रवाना हुए। उनमे लडकी के पिता आदि स्वजनो के अतिरिक्त तेज पत्र के डाइरेक्टर लालादेशबन्धु गुप्त, पडित नेकीराम शर्म्मा, श्री गुरदयाल लाल और श्री ताराचन्द भी थे। जब उनकी ट्रेन मथुरा के समीप पहुँची तो लडकी ने चिल्लाकर कहा— आगई मथुरा! आगई मथुरा।

स्टेशन पर जब ट्रेन रुकी तो शान्ति लालादेशबन्धु गुप्त की गोद में थी। पर ज्योही प्लेटफार्म पर उसने अपने पति के बडे भाई बाबूलाल चौबे को देखा, तुरन्त दौडकर उनके पैर छूए और पूछने पर कहा, ये मेरे जेठ हैं। शान्ति जब तागे पर बैठी, उसके साथ चार सज्जन दूसरे भी थे। तागे वाले से कह दिया गया था कि

लडकी जिधर-जिधर से कहे उधर-उधर से तागा ले चलो ।

शान्ति ने मार्ग मे कहा— यह सड़क पहले अलकतरे की नही थी और ये मकान भी नही थे । आगे चलकर कहा— अब हम मोती दरवाजे की ओर जा रहे हैं, वहा एक घडी लगी है। बस इतने मे घटाघर आ गया और तागा आगे जब एक गली के पास पहुँचा तब शान्ति ने कहा- **शायद यह गली मेरे घर की ओर जाती है।** तागा छोडकर अब सब पैदल चले । लडकी श्री ताराचन्द की गोद मे थी । इतने मे मनुष्यो की भीड में एक वृद्ध ब्राह्मण को देखकर उसने कहा, **ये मेरे श्वसुर हैं।** कुछ आगे चलने पर शान्ति ने एक घर की तरफ़ इशारा करके बतलाया कि पहले हम इस घर मे रहा करते थे, किन्तु बाद मे यह किराये दे दिया गया । जब मूल घर मे प्रवेश करने लगे तब फिर शान्ति ने कहा— मेरे समय मे यह घर पीले रग से पोता हुआ था अब सफेदी करदी गई है । घर मे जाते ही उसने एक कमरा दिखाकर कहा, **मैं इस कमरे में रहा करती थी ।**

मेरठ के एक प्रसिद्ध व्यक्ति भी साथ आए थे । उन्होने लडकी से पूछा — अच्छा । बताओ पखाना कहा है ? शान्ति तुरन्त नीचे गई एवं पखाने का स्थान बतलाया । कुछ देर बाद वे एक धर्मशाला मे गये, वहा कन्या ने पूर्वजन्म के भाई विट्ठलदास और चचियाससुर बनमाली को पहचाना । फिर शान्ति के कहने से वे एक दूसरे घर मे गए । वहाँ उसने एक कुँआ दिखलाया, जिसकी चर्चा दिल्ली में वह कई बार किया करती थी । फिर शान्ति ऊपर गई एव कहने लगी— कमरे के इस कोने मे मेरा धन गडा हुआ है । स्थान खोदा गया, किन्तु रुपये नही निकले । लेकिन स्थान को देखने से यह मालूम हो रहा था कि हाल मे ही किसी ने खोदकर यहाँ से धन निकाला है । एक दिन मनुष्यो की भीड में उसने अपने पूर्वजन्म के माता-पिता पहचाने और तत्काल दौडकर माता की गोद मे चली गई ।

एक दिन मन्दिर की तरफ जाते समय उसने द्वारकाधीश का मन्दिर पहचाना। अन्दर जाकर अपना मस्तक झुकाया एव कहा— ग्यारह बजे इसके पट बद हो जाते हैं। शान्ति जब तक मथुरा मे रही, अपने पूर्वजन्म के पुत्र को अपने पास ही रखा।

शान्ति ने अब तक जो भी बतलाया, सारा सत्य प्रतीत होने मे पडित नेकीराम शर्मा और लाला देशबन्धु गुप्त ने एक सयुक्तवक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमे लिखा है, सब मामले की जाच करने पर हमें कुछ भी सदेह नहीं रहा कि जो पडित केदारनाथ की पत्नी थी वही आत्मा अब शान्ति के शरीर में आगई है। फिर पडित नेकीराम शर्मा ने मथुरा मे एक सार्वजनिकसभा करके लडकी के ज्ञान के विषय मे व्याख्यान भी दिया। सुनकर लोगो के दिलों मे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अस्तु! वि० स० १९९२ मृगशिर एव सन् १९३५ ग्यारह दिसम्बर को शान्ति नौ वर्ष की थी[1]।

दो जन्मों की बात

छतरपुर (जबलपुर) के श्री एम. एल मिश्रा की द्वादशवर्षीय पुत्री स्वर्णलता पिछले दो जन्मो की बातें बताती है। वह असमीभाषा मे गीत गाती है एव नृत्य करती है जबकि वह कभी असम नही गई। सेठ गोविन्ददास, मध्य-प्रदेश के मत्री तथा उच्च अधिकारियों ने उक्त बालिका मे काफी बाते-चीतें की एवं आश्चर्य का अनुभव किया[2]।

प्रश्न २९— स्वप्न का क्या अर्थ है ?

उत्तर — अर्धनिद्रितअवस्था मे जब प्राणी की इन्द्रिया सुप्त होती है और मन जागृत होता है, उस समय वह जागृतमन, जो शब्द, रूप,

---

(१) कल्याण वर्ष १० अङ्क ६ सन् १९३६ जनवरी पृष्ठ ११२२–२४ से सकलित।

(२) हिन्दुस्तान ६ मई १९६२ से सगृहीत।

गन्ध, रस और स्पर्शरूप इन्द्रियो के विषयो का सेवन करता है (शब्द सुनता है, रूप देखता है, गंध सूंघता है, रस का स्वाद लेता है तथा पदार्थों का स्पर्श करता है) उस मानसिक क्रिया का नाम स्वप्न है[१]। स्वप्न अर्थात् अर्धनिद्रितअवस्था के मनसम्बन्धी विचार[२]।

वास्तव मे प्राणी की तीन अवस्थाएं होती हैं— जागृतअवस्था, स्वप्नअवस्था और सुषुप्तिअवस्था। जागृत रहने के समय प्राणी की जो अवस्था रहती है उसे जागृतअवस्था कहते हैं। जब प्राणी कुछ जागता एवं कुछ सोता है उस अर्धनिद्रित अवस्था को स्वप्नअवस्था कहते हैं और जब प्राणी गहरी नींद मे होता है तब उसकी अवस्था को सुषुप्तिअवस्था कहते हैं। भ श १६ उ ६ मे कहा है कि जीव जागृतअवस्था मे स्वप्न नहीं देखता, सुषुप्तिअवस्था मे भी स्वप्न नहीं देखता, किन्तु सुप्तजागृत अर्थात् अर्धनिद्रितअवस्था मे स्वप्न देखता है।

प्रश्न २६— स्वप्न क्या काम करते हैं ?

उत्तर — अनुभवियो का कहना है कि स्वप्न कई तरह का काम करते हैं। कई स्वप्न तो जागृतअवस्था की अतृप्त-इच्छाओ को दर्शन मात्र से पूर्ण करते है। उनसे मिलता कुछ भी नहीं। जैसे- विवाह की उत्कट इच्छावाले व्यक्ति स्वप्न मे अपना व्याह होता देखते हैं।

कई स्वप्न निकटभविष्य मे होने वाली घटनाओं की सूचना देते है। जैसे— कई व्यक्ति स्वप्न मे खुद को व दूसरो को मरे हुए या बीमार आदि देखते हैं, फलस्वरूप स्वप्न मे देखे हुए दृश्य तत्काल सत्यरूप मे घटित हो जाते हैं।

---

(१) इन्द्रियाणामुपरमे, मनोऽनुपरतं यदा।
सेवते विषयानेव, तद्विद्यात् स्वप्नदर्शनम्।

(२) मनसंबन्धि विचार होने के कारण ही स्वप्न का वर्णन मतिज्ञान के प्रकरण में दिया गया है।

कई स्वप्न आदेशरूप होते हैं। उनमे ऐसी सूचना होती है कि तू अमुक व्यापार करले। अमुक औषधि लेले या अमुक स्थान मे चला जा। तेरे अवश्य लाभ होगा। फलस्वरूप आज्ञानुसार काम करने से निश्चितरूप मे लाभ मिलता है। आदेशरूप स्वप्नो मे कई वार तो अदृशआवाज आती है एव कई वार अपने पूर्वज या इष्टदेव भी दृष्टि-गोचर हो जाते हैं।

प्रश्न २७— स्वप्न शुभ होते हैं या अशुभ ?

उत्तर— कई स्वप्न शुभ होते हैं और कई अशुभ होते हैं। अशुभस्वप्नो से चित्त मे असमाधि-अशान्ति उत्पन्न होती है एव शुभ-स्वप्नो से समाधि-शान्ति।

भ. श. १६ उ. ६ मे स्वप्नो की संख्या बहत्तर कही है। उनमें बयालीस तो जघन्य-अशुभ एव तीस उत्तम-शुभ माने गए हैं। उन्हे महास्वप्न भी कहा गया है। ग्रन्थानुसार स्वप्नो के नाम इस प्रकार हैं :—

४२ जघन्यस्वप्न— १ गन्धर्व, २ राक्षस, ३ भूत, ४ पिशाच, ५ बुक्कस, ६ महिप, ७ साप, ८ वानर, ९ कटकवृक्ष, १० नदी, ११ खजूर, १२ श्मशान, १३ ऊट, १४ खर, १५ बिल्ली, १६ श्वान, १७ दौस्थ्य, १८ सगीत, १९ अग्निपरीक्षा, २० भस्म, २१ अस्थि, २२ वमन, २३ तम, २४ दुस्त्री, २५ चर्म, २६ रक्त, २७ अश्म, २८ वामन, २९ कलह, ३० विविक्तदृष्टि, ३१ जलशोप, ३२ भूकम्प, ३३ गृहयुद्ध, ३४ निर्वाण, ३५ भग, ३६ भूमजन, ३७ तारापतन, ३८ सूर्यचन्द्रस्फोट, ३९ महावायु, ४० महाताप, ४१ विस्फोट, ४२ दुर्वाक्य, ये बयालीस स्वप्न अशुभसूचक माने गए हैं।

३० उत्तम स्वप्न— १ अर्हन्, २ बुद्ध, ३ हरि, ४ कृष्ण, ५ शम्भु, ६ नृप, ७ ब्रह्मा, ८ स्कन्द, ९ गणेश, १० लक्ष्मी, ११ गौरी,

१२ हाथी, १३ गौ, १४ वृषभ, १५ चन्द्र, १६ सूर्य, १७ विमान, १८ भवन, १९ अग्नि, २० समुद्र, २१ सरोवर, २२ सिंह, २३ रत्नो का ढेर, २४ गिरि, २५ ध्वज, २६ जलपूर्णघट, २७ पुरीष, २८ मास, २९ मत्स्य, ३० कल्पद्रुम— ये तीस स्वप्न उत्तमफल देने वाले गिने जाते हैं।

प्रश्न २८— स्वप्न कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर — स्वप्नदर्शन के पाच प्रकार हैं[1]। १ यथातथ्य २ प्रतान ३ चिन्तास्वप्न ४ तद्विपरीत ५ अव्यक्त।

१. यथातथ्यस्वप्न— स्वप्न मे जो वस्तु देखी है, जागने पर उसी का दृष्टिगोचर होना या उसके अनुरूप शुभ-अशुभ फल की प्राप्ति होना यथातथ्यस्वप्नदर्शन है। इसे दशाश्रुतस्कन्ध, दशा ५ मे चित्तसमाधि के दस स्थानो मे एक स्थान भी माना गया है[2]।

२. प्रतानस्वप्न— प्रतान नाम विस्तार का है। विस्तारयुक्त

---

(१) भगवती शतक १६ उ. ६.

(२) चित्तसमाधि के दस स्थान-कारण

१. धर्म करने की भावना उत्पन्न होने से चित्तसमाधि होती है।
२. यथातथ्यस्वप्न देखने से चित्तसमाधि होती है।
३ जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होने से चित्तसमाधि होती है।
४ साम्यभावयुक्त देवता के दर्शन होने से चित्तसमाधि होती है।
५ अवधिज्ञान उत्पन्न होने से चित्तसमाधि होती है।
६ अवधिदर्शन उत्पन्न होने से चित्तसमाधि होती है।
७. मन पर्यवज्ञान उत्पन्न होने से चित्तसमाधि होती है।
८ केवलज्ञान उत्पन्न होने से चित्तसमाधि होती है।
९ केवलदर्शन उत्पन्न होने से चित्तसमाधि होती है।
१० केवलज्ञानयुक्त मरण प्राप्त होने से चित्तसमाधि होती है।

स्वप्न देखना प्रतानस्वप्नदर्शन है। यह यथार्थ–अयथार्थ दोनो ही प्रकार का हो सकता है।

३. चिन्तास्वप्न— जागते समय जिस वस्तु का चिन्तन रहा हो उसी वस्तु को स्वप्न मे देखना चिन्तास्वप्नदर्शन है।

४. तद्विपरीतस्वप्न— स्वप्न मे जो वस्तु देखी है जागने पर उससे विपरीत वस्तु की प्राप्ति होना तद्विपरीतस्वप्नदर्शन है।

५. अव्यक्तस्वप्न— स्वप्न मे देखी हुई वस्तु का स्पष्टरूप से ज्ञान न होना अव्यक्तस्वप्नदर्शन है।

प्रश्न २६— स्वप्नदर्शन के कितने कारण हैं?

उत्तर — स्वप्नदर्शन के नौ निमित्त–कारण माने गए हैं[1]।

१. अनुभूत— पहले अनुभव की हुई वस्तु स्वप्न मे दीखती है। जैसे— स्नान, भोजन, विलेपन आदि का स्वप्न मे दीखना।

२. दृष्ट— पहले देखी हुई वस्तु स्वप्न मे दीखती है। जैसे— देखे हुए हाथी, घोड़े, ऊंट, बैल आदि का स्वप्न मे दीखना।

३. चिंतित— पहले सोची हुई वस्तु स्वप्न मे दीखती है, जैसे– चिन्तन की हुई स्त्री का स्वप्न मे दीखना।

४. श्रुत— किसी सुनी हुई वस्तु का भी स्वप्न आ जाता है। जैसे– भूत पिशाच– राक्षस व स्वर्ग–नरक का स्वप्न मे दिखाई देना।

५. प्रकृतिविकार— वात–पित्त आदि किसी धातु की न्यूनाधिकता से होने वाला शरीर का विकार प्रकृतिविकार कहलाता है। प्रकृति के विकार से भी स्वप्नदर्शन होता है। जैसे— वातविकृति वाला पर्वत–वृक्षादिक पर चढना, आकाश मे उडना आदि स्वप्न में देखता है। पित्तप्रकोप वाला जल, फूल, अनाज, जवाहिरात, लाल–पीले रग की चीजें या बागबगीचे आदि स्वप्न मे देखता है तथा कफ की

---

(१) विशेषावश्यकभाष्य गाथा १७०३

वहुलता वाला व्यक्ति अश्व, नक्षत्र, चन्द्रमा, शुक्लपक्ष एव नदी-तालाव-समुद्र आदि का लाघना देखता है ।

६. देवता— किसी देवता के अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी स्वप्न आजाता है।

७. अनूप— पानी वाला प्रदेश भी स्वप्न आने का निमित्त वनता है ।

८ पुण्य— पुण्योदय के कारण से भी स्वप्न आता है जो शुभ होता है।

६. पाप— पाप के उदय मे भी स्वप्न आता है जो अशुभ होता है ।

प्रश्न ३०— सभी स्वप्नों का फल होता है या कई निष्फल भी चले जाते हैं ?

उत्तर — स्वप्नशास्त्र मे कहा है कि स्वप्नदर्शन के पूर्वोक्त नव कारणो मे से छः कारणो से आए हुए स्वप्न तो निष्फल ही जाते हैं, किन्तु देवता के निमित्त से या पुण्य-पाप के निमित्त से आए हुए स्वप्न शुभ या अशुभ फल अवश्य देते है।

स्वप्नशास्त्रियो ने स्वप्नफल का समय निश्चित करते हुए कहा है कि शुभाशुभ फल देने योग्य उपर्युक्त तीनो प्रकार के स्वप्न यदि रात के प्रथमप्रहर मे देखे जाएँ तो उनका फल वारह महीनो से मिलता है । दूसरेप्रहर मे दीखें तो उनका फल छः महीनो से प्राप्त होता है । तीसरे प्रहर वाले स्वप्नो का फल एक महीने से मिलता है। चौथे प्रहर मे दो घडी रात वाकी हो उस समय देखे हुए स्वप्न दश दिनो से तथा सूर्योदय के समय देखे हुए स्वप्न उसी समय फल दिखलाते हैं, लेकिन दिन मे यदि स्वप्न आएँ तो उनका कुछ भी फल नही होता ।

प्रश्न ३१— किन-किन व्यक्तियों के स्वप्न यथातथ्य होते हैं ?

उत्तर — सवृत-महावीर भगवान के समान जो महान्-योगिराज होते हैं उनके स्वप्न सच्चे-सफल होते हैं । असवृत-अव्रती जीव तथा सवृतासवृत-श्रावक जो स्वप्न देखते हैं उनमे कई स्वप्न तो निष्फल होते है और तीर्थङ्कर, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, वलदेव, माण्डलिकराजा एव भावितआत्मा-अनगार की माताएँ तीर्थंकरादि गर्भ में आने पर जो स्वप्न देखा करती हैं तथा चन्द्रगुप्त राजा ने जो सोलह स्वप्न देखे थे; इस प्रकार के कई स्वप्न सफल भी होते हैं[1] ।

(तीर्थंकरादि की माताएँ कई अव्रती एव कई श्राविका होती हैं)

प्रश्न ३२— तीर्थंकर आदि महापुरुषो की माताएँ कितने स्वप्न देखती हैं ?

उत्तर — तीर्थंकर या चक्रवर्ती जब गर्भ मे आते हैं तब उनकी माताएं पूर्वोक्त तीस उत्तम स्वप्नो मे से-ये चौदह स्वप्न देखती हैं[2]- हाथी १ बैल २ सिंह ३ लक्ष्मी ४ पुष्पमाला ५ चन्द्रमा ६ सूर्य ७ ध्वजा ८ कलश ९ पद्मसरोवर १० समुद्र ११ विमान[3] या भवन १२ रत्नराशि १३ निर्धूम-अग्नि १४ ।[4]

वासुदेव की माता इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई भी सात देखती है, बलदेव की माता चार और माण्डलिकराजा तथा भावित-

---

(१) भगवती शतक १६ उ. ६

(२) भ श. १६ उ. ६

(३) जो तीर्थंकर या चक्रवर्ती स्वर्ग से आते हैं उनकी माता विमान देखती है और नरक से आने वालो की माता भवनपतिदेवों का भवन देखती है।

(४) तीर्थंकरों की माताएं उपर्युक्त १४ स्वप्न विशेष स्पष्ट देखती हैं एवं चक्रवर्ती की माताएं कुछ अस्पष्ट देखती हैं ।

आत्मा-अनगार की माता एक स्वप्न देखती है[1] ।

प्रश्न ३३—महावीर भगवान के दस स्वप्न कौन-कौन से हैं ?

उत्तर — भगवान महावीर साढे बारह वर्ष तक छद्मस्थ रहे, जिसमे मात्र एक मुहूर्त निद्रा ली । कहा जाता है कि अस्थिग्राम के बाहर शूलपाणि यक्ष के मंदिर मे एकबार भगवान ने ध्यान किया । सगमदेवता की तरह उसने भी रातभर प्रभु को बड़े भारी कष्ट दिए । भगवान अपने ध्यान मे सुनिश्चल रहे । पौणे चार प्रहर तक कष्ट देकर यक्ष हार गया और क्षमा मागकर चला गया । उस समय रात भर की खिन्नता के कारण प्रभु को दो घडी तक कुछ नीद आई एव उसमें दस स्वप्न देखकर वे जागृत हुए ।

स्वप्न एवं उनके फल निम्न प्रकार हैं[2] ।

(१) पहले स्वप्न मे प्रभु ने एक विशालकाय-पिशाच को पराजित किया । उसका फल यह हुआ कि उन्होंने मोहकर्म को समूल नष्ट किया ।

(२) दूसरे स्वप्न मे प्रभु ने श्वेतपाखवाले पुरुषकोकिल को देखा । फलस्वरूप उन्हे शुक्लध्यान प्राप्त हुआ ।

(३) तीसरे स्वप्न मे प्रभु ने विचित्रपाखवाले पुंस्कोकिल को देखा । फलस्वरूप उन्होने विचित्र-विचारयुक्त स्वसमय-परसमय को बतलाने वाले द्वादशागीरूप गणिपिटक का कथन किया (आचाराङ्गादि बारह शास्त्र आचार्यों के लिये ज्ञानरूपी धन की पेटी है अत. इनका नाम गणिपिटक है) ।

(४) चोथे स्वप्न मे प्रभु ने सर्वरत्नमय दो मालाएं देखी । फलस्वरूप उन्होंने श्रावकधर्म- और साधुधर्म ऐसे दो धर्मो की

---

(१) भगवती शतक १६ उ ६ तथा ज्ञाता. अ. १

(२) भगवती शतक १६ उ. ६

प्ररूपणा की ।

(५) पाचवे स्वप्न मे प्रभु ने श्वेत गायो का झुंड देखा । फल यह हुआ कि उनके आगे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका— इन चारो का बडा भारी सघ-समूह हुआ ।

(६) छठे स्वप्न मे प्रभु ने चारो ओर से कुसुमित पद्मसरोवर देखा । फलस्वरूप उन्होने भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक— इन चारो प्रकार के देवो को धर्म समझाया ।

(७) सातवे स्वप्न मे प्रभु ने अपनी भुजाओ से महासमुद्र को पार किया देखा । फलस्वरूप आप अनन्त ससारसमुद्र को पार करके मोक्ष को प्राप्त हुए ।

(८) आठवें स्वप्न मे प्रभु ने महातेजस्वी सूर्य को देखा । फलस्वरूप उन्हे अनन्त अनुत्तरकेवलज्ञान प्राप्त हुआ ।

(९) नौवे स्वप्न मे प्रभु ने विशाल मानुषोत्तरपर्वत को नीलवैडूर्यमणि सदृश अपनी आतडियो से घिरा हुआ देखा । फलस्वरूप देवलोक, असुरलोक, मनुष्यलोक मे आपका यश और सम्मान परिव्याप्त हुआ ।

(१०) दसवें स्वप्न मे प्रभु ने मेरुपर्वत की चूलिका पर अपने आपको सिहासनारूढ देखा । फलस्वरूप उन्होने विशालपरिषद मे स्फटिकसिहासन पर बैठकर धर्मोपदेश दिया ।

प्रश्न ३४— चन्द्रगुप्त राजा के स्वप्न एवं उनका फल किस प्रकार है ?

उत्तर — पाँचवे आरे के प्रारम्भ मे पाटलीपुत्र (पटना) नगर मे मौर्यवशी चन्द्रगुप्त राजा राज्य करता था । वह जैनी श्रावक था एव जीव-अजीवादि तत्त्वो का जानकार था । एक बार राजा पाक्षिक-पौषध करके धर्मजागरण कर रहा था । रात्रि के तीसरे

प्रहर मे उसे कुछ निद्रा आई एवं सोलह स्वप्न दीखे। राजा जागकर उन पर कुछ विचार करने लगा।

उस समय भगवान महावीर के सातवे पट्टधर चौदहपूर्वधारी श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामी वहा पधारे। उनके साथ पाच-सौ साधु थे। राजा चन्द्रगुप्त दर्शनार्थ गया। धर्मोपदेश सुनकर सोलह स्वप्नो का फल पूछा और श्री भद्रबाहुस्वामी ने अपने श्रुतज्ञान के बल से बतलाया। स्वप्न एव उनका फल इस प्रकार है[1]।

(१) पहले स्वप्न मे राजा ने कल्पवृक्ष की शाखा टूटी हुई देखी। उसका फल–भविष्य मे कोई भी राजा जैनधर्म की दीक्षा नहीं लेगा।

(२) दूसरे स्वप्न मे बिनासमय सूर्य को अस्त होते हुए देखा। उसका फल–भविष्य मे इस भरतक्षेत्र के अन्दर किसी को केवलज्ञान नही होगा।

(३) तीसरे स्वप्न मे चन्द्रमा को छिद्रसहित देखा। उसका फल–भगवान का अहिंसादि धर्म अनेक मार्गों वाला हो जायेगा अर्थात् एक आचार्य की परम्परा को छोडकर भिन्न-भिन्न साधु आचार्य बनकर अपनी-अपनी परम्परा चलाएंगे एव अनेक प्रकार की समाचारी प्रचलित हो जायेगी।

(४) चौथे स्वप्न मे भयकर अट्टहास एव कौतूहल करने वाले भूतो को नाचते हुए देखा। उसका फल–कुगुरु, कुदेव एवं कुधर्म की मान्यता होगी। आगम-परम्परा से विरुद्ध चलने वाले स्वच्छन्दचारी, स्वयमेव दीक्षित होने वाले, तप के चोर, वचन के चोर, सूत्र के चोर, अर्थ के चोर इन सब दोषो युक्त वेषधारी–मुनि भूतो की तरह नाचेंगे एव अज्ञानी लोग उन्हे बहुत सम्मान देंगे।

---

(१) व्यवहारचूलिका के आधार से।

(५) पाचवें स्वप्न मे वारह फणो वाले काले सांप को देखा। उसका फल-वारह साल तक दुर्भिक्ष पडेगा। कुछ कालिक आदि सूत्र विच्छेद हो जायेंगे। चैत्यो-मन्दिरो की स्थापना होगी। जिनविम्बो की प्रतिष्ठा होगी। यती परिग्रहधारी होकर जगत् को उलटे मार्ग चढायेंगे। उस समय यदि कोई सच्चे साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका उन्हे सन्मार्ग दिखाने की चेष्टा करेंगे तो वे उनको बिल्कुल नही टिकने देंगे एव निन्दा के पात्र वना देगे।

(६) छट्ठे स्वप्न मे आए हुए विमान को वापिस लौटते हुए देखा। उसका फल-जघाचारण-विद्याचारण आदि लब्धिधारी साधु भरतक्षेत्र मे नही आएंगे अर्थात् ऐसी लब्धियां नही रहेगी।

(७) सातवें स्वप्न मे कमल को कचरे के ढेर पर उगा हुआ देखा। उसका फल-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र इन चारो वर्णो मे मुख्यतया वैश्यो के हाथो मे धर्म रहेगा। वनिए भी भिन्न भिन्न मत को पकड कर खीचातारण करेंगे। सूत्र की रुचि वाले तथा माता-पिता एव राजा की तरह साधुओ की रक्षा करने वाले श्रावक विरले होंगे। आचार्य, उपाध्याय एव सघ के साधु प्रत्यनीक, सौत के समान छिद्रान्वेषी और सच्चे साधु-साध्वियो की निन्दा करने वाले अधिक मात्रा मे होंगे।

(८) आठवें स्वप्न मे खद्योत-आगिया को उद्योत करते हुए देखा। उसका फल-वेषधारी साधु क्षमा, अहिंसादि मुख्यधर्मो को छोडकर मात्र वाह्य क्रियाओ का आडम्बर दिखलाएंगे एव सम्मान प्राप्त करेंगे।

(९) नौवें स्वप्न मे तीनो दिशाओ में सूखा एवं दक्षिण दिशा मे कुछ जलयुक्त समुद्र देखा। उसका फल जहा-जहा तीर्थंकरो के पचकल्याणक (च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल एव निर्वाण) हुआ है। वहा-वहा प्रायः धर्म की हानि होगी, मात्र दक्षिण दिशा मे थोडासा धर्म

(३) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे पूर्व–पश्चिम लोकान्त तक लम्बी रस्सी को मैंने काट डाला ऐसे देखे तो वह उसी भव मे जन्म-मरण का अन्त करे ।

(४) कोई स्त्री–पुरुष मैंने उलझे हुए पंचरगे सूत को सुलझा दिया ऐसा स्वप्न देखे तो वह उसी जन्म मे मोक्ष जाए ।

(५) कोई स्त्री–पुरुष लोहे के, तावे के, रागे के और शीशे के ढ़ेर पर खुद को चढा हुआ स्वप्न मे देखे तो वह दूसरे भव मे मोक्षगामी बने ।

(६) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे चादी, सोना, रत्न, एवं वज्ररत्नो के ढेरो पर स्वय को आरूढ़ हुआ देखे तो वह उसी भव मे सिद्ध बने ।

(७) कोई स्त्री–पुरुष घास के ढ़ेर को या कचरे के ढेर को स्वप्न मे विखेर कर फैंक दे तो वह उसी भव मे मुक्तिगामी बने ।

(८) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे एक वडे शरस्तम्भ, वीरणस्तम्भ, वशीमूलस्तम्भ या वल्लिमूलस्तम्भ को उखाड कर फैंक दे तो वह उसी भव मे सिद्ध बने ।

(९) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे दूध, दही, घी या मधु के घडे को उठाले तो वह उसी भव मे मोक्षप्राप्ति करे ।

(१०) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे मदिरा, काजी, तेल तथा चर्वी के घडे को फोड डाले तो वह दूसरे भव मे मोक्ष जाता है ।

(११) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे कमलयुक्त पद्मसरोवर मे अपने आपको प्रवेश किया हुआ देखे तो वह उसी भव मे मुक्ति जाता है ।

(१२) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे अपनी भुजाओ से तैर कर समुद्र के पार चला जाय तो वह उसी भव मे मोक्ष प्राप्त होता है ।

(१५) पन्द्रहवें स्वप्न मे राजकुमार को वृषभ की पीठ पर बैठा हुआ देखा। उसका फल—राजकुमार राज्यभ्रष्ट होकर म्लेच्छो का आश्रय लेकर जीवन व्यतीत करेंगे।

(१६) सोलहवें स्वप्न मे दो काले हाथियो को परस्पर युद्ध करते हुए देखा। उसका फल—अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा अकालवृष्टि अधिक होगी। पुत्र और शिष्य बडो के बीच मे बोलने वाले होंगे। देवगुरु एव माता-पिता की सेवा नही करेंगे। भाई-भाई तथा साधु-साधु परस्पर लडाई-झगडा अधिक करेंगे।

उपर्युक्त फल बताकर श्री भद्रबाहुस्वामी ने कहा—राजन् ! यह दुःषमकाल—पाचवा आरा लोगो के लिए बहुत दुखदाई होगा। इसमे जो सिंह के समान पराक्रमी पुरुष होंगे, वे ही धर्म करके स्वर्ग मे जाएगे एव भविष्य मे मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

भद्रबाहुस्वामी का ज्ञान सुनकर चन्द्रगुप्त राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ। ज्येष्ठपुत्र को राज्य देकर उसने गुरु के पास दीक्षा ली एव शुद्ध पालकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

प्रश्न २४—मोक्षगामी जीवो के विषय मे क्या कोई स्वप्नों का वर्णन है ?

उत्तर — भगवती शतक १६ उ ६ मे चौदह स्वप्नो का वर्णन इस प्रकार है—

(१) कोई स्त्री-पुरुष स्वप्न मे एक अश्वपक्ति, गजपक्ति यावत् वृषभपक्ति देखे एव उन पर खुद को चढा हुआ देखकर जाग जाय तो वह उसी भव में सिद्ध-भगवान बने।

(२) कोई स्त्री-पुरुष स्वप्न में एक रस्सी, जो समुद्र के पूर्व-पश्चिम किनारो तक लम्बी हो उसे अपने हाथो से समेटता हुआ स्वय को देखे तो वह उसी भव मे मुक्त बने।

(३) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे पूर्व–पश्चिम लोकान्त तक लम्वी रस्सी को मैंने काट डाला ऐसे देखे तो वह उसी भव मे जन्म-मरण का अन्त करे ।

(४) कोई स्त्री–पुरुष मैंने उलझे हुए पंचरगे सूत को सुलझा दिया ऐसा स्वप्न देखे तो वह उसी जन्म मे मोक्ष जाए ।

(५) कोई स्त्री–पुरुष लोहे के, तावे के, रागे के और शीशे के ढेर पर खुद को चढा हुआ स्वप्न मे देखे तो वह दूसरे भव मे मोक्षगामी वने ।

(६) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे चादी, सोना, रत्न, एव वज्ररत्नो के ढेरो पर स्वयं को आरूढ़ हुआ देखे तो वह उसी भव मे सिद्ध वने ।

(७) कोई स्त्री–पुरुष घास के ढेर को या कचरे के ढेर को स्वप्न मे विखेर कर फेंक दे तो वह उसी भव मे मुक्तिगामी वने ।

(८) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे एक वडे शरस्तम्भ, वीरणस्तम्भ, वशीमूलस्तम्भ या वल्लिमूलस्तम्भ को उखाड कर फेंक दे तो वह उसी भव मे सिद्ध वने ।

(९) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे दूध, दही, घी या मधु के घडे को उठाले तो वह उसी भव मे मोक्षप्राप्ति करे ।

(१०) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे मदिरा, काजी, तेल तथा चर्वी के घडे को फोड डाले तो वह दूसरे भव मे मोक्ष जाता है ।

(११) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे कमलयुक्त पद्मसरोवर मे अपने आपको प्रवेश किया हुआ देखे तो वह उसी भव मे मुक्ति जाता है ।

(१२) कोई स्त्री–पुरुष स्वप्न मे अपनी भुजाओ से तैर कर समुद्र के पार चला जाय तो वह उसी भव में मोक्ष प्राप्त होता है ।

(१३) कोई स्त्री-पुरुप स्वप्न मे रत्नमयमहल के अन्दर प्रविप्ट हो जाय तो वह उसी भव मे मोक्षगामी होता है।

(१४) कोई स्त्री-पुरुप स्वप्न मे रत्नमय विमान पर चढ जाय तो वह उसी भव मे मोक्ष को प्राप्त होता है।

प्रश्न ३६— स्वप्नावस्था मे स्वप्नदर्शन के अतिरिक्त क्या और भी कुछ हो सकता है ?

उत्तर — हा ! स्वप्नसमोहनविद्या के जानकार अपने विद्यावल से व्यक्ति को अर्ध निद्रित वनाकर उससे चाहे जैसा काम करवा लेते हैं। स्वप्नावस्था मे भी व्यक्ति का समोहक के कहने पर पूरा-पूरा ध्यान रहता है। इस अवस्था मे वालको को शिक्षा भी दी जाती है एव स्त्रियो का प्रसवकार्य भी होता है।

इस विद्या का आविप्कार **मेस्मर आस्ट्रेलियन** ने अट्ठारहवी शताव्दी मे किया था। मेस्मर के नाम से यह विद्या **मेस्मेरिज्म** कहलाई। मेस्मर इसके सहारे रोगो की काफी प्रमाण मे चिकित्सा किया करते थे। कालान्तर से इस विद्या का नाम **हिपनोटिज्म** हो-गया। जगत्प्रसिद्ध हिपनोटिस्ट पोलगर ने कुछ वर्षो पूर्व रेडियो द्वारा तीन हजार मनुष्यो को समोहित किया था।

प्रश्न ३७— मतिज्ञान के द्रव्य-क्षेत्र काल भाव का वर्णन कीजिए ?

उत्तर — द्रव्य से मतिज्ञानी आदेश से अर्थात् सामान्यरूप से अथवा सूत्रो के सहारे से धर्मास्तिकाय आदि सव द्रव्यो को जानता है और विशेषरूप से कुछ कुछ जानता है। जैसे धर्मास्तिकाय है, धर्मास्तिकाय का प्रदेश है, धर्मास्तिकाय गति मे सहायक है, अरूपी है आदि-आदि। मात्र ऐसे साधारणरूप से जानता है, लेकिन प्रत्यक्ष-रूप से देखने की शक्ति नही है।

क्षेत्र से— मतिज्ञानी आदेश से सर्व क्षेत्र को जानता है पर देखता नही । काल मे– मतिज्ञानी आदेश से सर्वकाल (भूत–भविष्य–वर्तमान) को जानता है पर देखता नही ।

भाव से– मतिज्ञानी आदेश से औदयिक आदि सब भावों–पर्यायो को जानता है पर देखता नही[1] ।

(१) नन्दी सू० २६

दूसरा पुञ्ज

प्रश्न १—श्रुतज्ञानका क्या अर्थ है?

उत्तर — नन्दी सूत्र २४ मे कहा है कि—जो सुना जाय वह श्रुतज्ञान है। यहाँ सुननेका मतलब समझना है अर्थात् जिसके द्वारा समझा जाय उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। समझनेके दो मार्ग है—या तो दूसरे व्यक्ति के वचन से व मुख आदि के सकेत से वस्तुका स्वरूप समझा जाता है या किसी ग्रन्थ-विशेष से पढकर समझा जाता है। दोनो मार्गों मे शब्द या सकेतके सहारेसे ही ज्ञान होता है। इसलिए शब्द व सकेत द्रव्यश्रुत कहलाते हैं एव उनके सहारेसे व्यक्तिके हृदय मे होने वाला ज्ञान भावश्रुत-श्रुतज्ञान कहलाता है।

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है[1]। अर्थात् श्रुतज्ञानसे पहले मतिज्ञान होता ही है, क्योकि कोई भी बात शब्द या सकेत द्वारा समझाई जाएगी तो पहले उसके अवग्रह आदि अवश्य होगे। मतिज्ञान की तरह श्रुतज्ञानमे भी इन्द्रिय और मनकी सहायता परम आवश्यक है।

प्रश्न २—मतिज्ञान और श्रुतज्ञानमे क्या अन्तर है?

उत्तर — मतिज्ञान केवल वर्तमानमे सामने रहे हुए शब्दादि विषयोको ग्रहण करता है और श्रुतज्ञान तीनो कालके विषयो को जानता है एव ज्ञान करते समय ज्ञेय वस्तु सामने नही भी रहती।

मतिज्ञान शब्दरहित एवं शब्दसहित दोनो प्रकारका है—अर्थावग्रह (कुछ स्पर्श हुआ आदि) शब्दरहित है, और ईहा आदि (कांटा

---

[1] नन्दी सूत्र—२४

होना चाहिए आदि) शब्दसहित है, जब कि श्रुतज्ञान शब्दसहित ही होता है यानि शब्द व सकेत बिना होता ही नही[1]।

मतिज्ञान मात्र सामने आए हुए स्पर्शादि पदार्थों को जानता है एव इनकी विविध अवस्थाओ पर विचार करता है तथा श्रुतज्ञान शब्दके सहारे से जाने हुए पदार्थोंका शब्दके द्वारा पुन प्रतिपादन कर सकता है अर्थात् दूसरोको भी समझा सकता है।

मतिज्ञान अर्थाश्रयी है—वस्तुके सहारेसे ज्ञान करने वाला है और श्रुतज्ञान शब्दाश्रयी है अर्थात् शब्द के सहारेसे ज्ञान करने वाला है तथा मतिज्ञान मतिज्ञानावरणीयकर्मका क्षयोपशम है एव श्रुतज्ञान श्रुतज्ञानावरणीयकर्मका क्षयोपशम है।

इतना भेद होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानका पूर्ववर्त्ती–अपरिपक्व अ श मतिज्ञान है तथा उत्तरवर्त्ती–परिपक्व अ श श्रुतज्ञान है। अगर मतिज्ञान कच्चा आटा है तो श्रुतज्ञान पकी हुई रोटी है। अगर मतिज्ञान कच्चा दही है तो श्रुतज्ञान पकी हुई कढी है। वास्तव मे द्रव्यश्रुतके सहारेसे मतिज्ञान जब दूसरो को समझाने के योग्य बन जाता है तब वही श्रुतज्ञान हो जाता है[2]।

प्रश्न ३—श्रुतज्ञानके कितने भेद हैं?

उत्तर — श्रुतज्ञानके चौदह भेद है—१ अक्षरश्रुत २ अनक्षरश्रुत ३ सज्ञिश्रुत ४ असज्ञिश्रुत ५ सम्यक्श्रुत ६ मिथ्याश्रुत ७ सादिश्रुत ८ अनादिश्रुत ९ सपर्यवसितश्रुत १० अपर्यवसितश्रुत ११ गमिकश्रुत १२ अगमिकश्रुत १३ अङ्गप्रविष्टश्रुत १४ अनङ्गप्रविष्टश्रुत[3] इनका विवेचन आगे के पृष्ठ मे पढ़िये।

---

(१) विशेषावश्यकभाष्य-वृत्ति १०० के आधार से।

(२) जैनसिद्धान्तदीपिका २/१२

(३) समवायाङ्ग समवाय १४ तथा नन्दी सूत्र ३७

(१) अक्षरश्रुत– जिसका कभी क्षरण अर्थात् नाश न हो उसे अक्षर कहते हैं। जीव उपयोगस्वरूपी होनेसे ज्ञानका कभी नाश नहीं होता इसलिए यहा ज्ञान ही अक्षर है। ज्ञानोत्पत्तिके निमित्त होनेके कारण उपचारसे अकारादि वर्ण भी अक्षर कहे जाते है। अक्षररूप जो ज्ञान है वह अक्षरश्रुत कहलाता है। इसके तीन भेद हैं– संज्ञाक्षरश्रुत, व्यञ्जनाक्षरश्रुत और लब्ध्यक्षरश्रुत।

क. ख. वगैरह आकारो का क. ख आदि नाम रखना संज्ञाक्षरश्रुत है, क्योकि इन आकारो द्वारा ही अक्षरो का ज्ञान होता है। ब्राह्मी आदि लिपियो के भेदसे यह अनेक प्रकार का है। यहा सज्ञा का अर्थ नाम है।

क. ख. आदिका उच्चारण करके उन्हे व्यक्त–प्रकट करना व्यन्जनाक्षरश्रुत है। व्यञ्जनका मतलब व्यक्त करना है। ये दोनो द्रव्यश्रुत हैं और अजीव हैं। पुस्तकें भी अक्षरोका समूह होनेसे द्रव्यश्रुत ही हैं।

अक्षरश्रुतज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमसे व्यक्तिके हृदयमे जो अक्षरज्ञानका लाभ होता है, उस अक्षरज्ञानके लाभको लब्ध्यक्षरश्रुत कहते हैं। यह भावश्रुत है, जीव है और पूजाके योग्य हैं। पाच इन्द्रिया और मन–इन छहो के निमित्त से होनेके कारण इसके छ: भेद होते हैं– श्रोत्रेन्द्रिय–लब्ध्यक्षरश्रुत यावत् स्पर्शनेन्द्रिय–लब्ध्यक्षरश्रुत एव नोइन्द्रिय– (मन) लब्ध्यक्षरश्रुत। श्रोत्रेन्द्रियसे शब्द सुननेके बाद यह शङ्खका शब्द है इस प्रकार अक्षरानुविद्ध शब्दार्थके पर्यालोचन–रूप जो ज्ञान होता है वह श्रोत्रेन्द्रिय--लब्ध्यक्षरश्रुत कहलाता है। ऐसे ही नेत्रसे देखनेके बाद यह मनुष्य है, नाकसे सूघने के बाद यह गुलाब का फूल है, जीभसे चखने के बाद यह दही खट्टा है, त्वचासे छूनेके बाद यह पानी गर्म है तथा मनसे सोचनेके बाद

यह कर्म है, आदि आदि— जो अक्षररूप पर्यावलोचन होता है वे चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षरश्रुत यावत् नोइन्द्रिय-लब्ध्यक्षरश्रुत कहलाते हैं।

(२) अनक्षरश्रुत— अक्षरोके विना शरीरकी चेष्टा आदि से होनेवाला ज्ञान अनक्षरश्रुत कहलाता है। इसके अनेक भेद हैं। जैसे-सास लेना, सास छोडना, थूकना, खांसना, छीकना, नाक-सिनकना एवं अनुस्वारयुक्त चेष्टा (ऊ-ऊं आदि) करना। इन चेष्टाओंसे अक्षरोका उच्चारण न होते हुए भी इनके द्वारा दूसरोंके भाव जाने जाते हैं एवं अपने भाव दूसरोको जताये जाते हैं। जैसे-लवे और भारी सास लेनेसे मानसिकदु.ख या श्वासका रोग जताया जाता है तथा खांसकर आगमनकी सूचना दी जाती है। हाथ, पैर एव नेत्रके इशारे भी इसी प्रकार समझ लेने चाहिये।

(३) सज्ञिश्रुत— संज्ञा अर्थात् सोचने-विचारनेकी शक्ति जिस जीवमे हो उसे संज्ञी कहते हैं। संज्ञी जीवोका जो श्रुतज्ञान है वह सज्ञिश्रुत कहलाता है।

संज्ञी जीव तीन प्रकारके होते हैं— कालिक्युपदेशसज्ञी, हेतूपदेशसज्ञी और दृष्टिवादोपदेशसज्ञी। जो ईहा अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता एव विमर्शयुक्त हैं [१] अर्थात् मन.पर्याप्तिवाले हैं वे कालिक्युपदेशसज्ञी हैं। जो जीव वुद्धिपूर्वक अपने शरीर आदिकी रक्षाके निमित्त इष्ट-आहार आदिकी प्राप्तिके लिए प्रवृत्त होते है और अनिष्ट-आहार आदि से निवृत्त होते हैं वे हेतूपदेशसंज्ञी हैं। इस प्रकारके सज्ञी द्वीन्द्रियादि जीव भी हैं। ये इष्ट विषयमे प्रवृत्ति तथा अनिष्ट विषयसे निवृत्तिरूप हेतुसे ही सज्ञी

(१) ईहा, आदिका अर्थ प्रथम पुन्जके २२ वें प्रश्नसे समझना चाहिए

कहे गये हैं। जिनके षास सम्यग्ज्ञान हो वे जीव दृष्टिवादोपदेश-संज्ञी कहलाते है। यहा सज्ञाका अर्थ सम्यग्ज्ञान है। इस अर्थ की अपेक्षासे सम्यग्दृष्टि जीवोको सज्ञी एवं मिथ्यादृष्टि जीवोको असज्ञी कहसकते हैं। वास्तवमे सज्ञिश्रुतसे यहा मनवाले जीवोका श्रुतज्ञान समझना चाहिए।

(४) असंज्ञिश्रुत— बिनामनवाले जीवोमे जो अव्यक्त-ज्ञान है, वह असज्ञिश्रुत कहलाता है। मक्खी, मच्छर एवं भ्रमर आदिका भौं-भौं शब्द भी इसीमे समझना चाहिए। पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीव यद्यपि बिल्कुल मूर्च्छित दशामे हैं, फिर भी उनमे आहार ग्रहण करने आदिका जो ज्ञान है वह भी असज्ञिश्रुत ही है।

(५) सम्यक्श्रुत— केवलज्ञान-केवलदर्शनयुक्त श्रीअरिहत भगवानने जो आचाराङ्ग आदि बारह अङ्गशास्त्र कहे हैं, उन अङ्गशास्त्रोका ज्ञान सम्यक्श्रुत कहलाता है [१] तथा चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह यावत् दसपूर्वधारी मुनियो द्वारा निर्मित शास्त्र भी सम्यक्श्रुत ही माना गया है। दस पूर्वसे कम ज्ञानवालोका कथन सम्यक्श्रुत हो भी सकता है और नही भी होता। यदि वह अङ्ग-शास्त्रोसे अविरुद्ध हो तो सम्यक्श्रुत है अन्यथा मिथ्याश्रुत है।

(६) मिथ्याश्रुत— अल्पमति मिथ्यादृष्टियो द्वारा अपनी इच्छानुसार बुद्धिकी कल्पनासे रचे हुए ये ग्रन्थ मिथ्याश्रुत हैं— (१) भारत (२) रामायण (३) भीमासुरकल्पितग्रन्थ (४) कौटिल्य-अर्थशास्त्र (५) शकटभद्रिका (६) खोड (घोटक) मुख (७) कार्पा-सिक (८) नागसूक्ष्म (९) कनकसप्तति [२] (१०) वैशेषिक [३]

---

(१) नन्दी सूत्र- ४०

(२) सुवर्णके इतिहासको बतानेवाला ग्रन्थ

(३) कणादका वैशेषिक दर्शन

(११) बुद्धवचन (१२) त्रैराशिक[1] (१३) कापिलीय[2] (१४) लोकायत (१५) षष्ठितन्त्र (१६) माठर[3] (१७) पुराण (१८) व्याकरण शब्दशास्त्र या पाणिनि आदिके प्रश्नोत्तर (१९) भागवत (२०) पातञ्जलि (२१) पुष्पदैवत (२२) लेख (२३) गणित (२४) शकुनरुत (२५) नाटक अथवा ७२ कलायें और अङ्गोपाग सहित चारो वेद।

ये सब ग्रन्थ मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वरूपमे परिगृहीत हो तो मिथ्याश्रुत हैं और सम्यक्दृष्टिके सम्यक्त्वरूपमे परिगृहीत हो तो ये ही ग्रन्थ सम्यक्श्रुत हैं। तत्त्व यह है कि उपर्युक्त ग्रन्थोंमे यदि कोई मिथ्यातत्त्व अर्थात् हिंसा, असत्य आदि ग्रहण करे तो उसके लिए ये ग्रन्थ मिथ्याश्रुत हैं तथा इनसे प्रेरणा पाकर सम्यक्तत्त्व यानि अहिंसा, सत्य आदि धारण करे तो उसके लिए ये ही ग्रन्थ सम्यक्श्रुत हैं।[4] वास्तवमे जो ग्रन्थ मोक्षमार्गमे बाधक हो वे मिथ्याश्रुत है और जो मोक्षमार्गके साधक हो वे सम्यक्श्रुत हैं।

पुराणे जमानेमे कइयोकी यह धारणा थी कि जैनसाधुओंको भारत, रामायण, व्याकरण, वेद एव उपनिषद् आदि ग्रन्थ नही पढ़ने चाहिए क्योंकि ये सभी मिथ्याश्रुत हैं। लेकिन प्रस्तुत नन्दी सूत्र ४१ के वर्णनानुसार इन्हे पढनेमे कोई दोष प्रतीत नही होता। पढनेवालेको इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि इन सब ग्रन्थोंको पढनेसे पहले अपने धर्मशास्त्रोंका रहस्य पूर्णतया समझले अन्यथा लाभके बदले नुकसान भी हो सकता है।

प्रश्न ४— पापश्रुत कितने हैं एव उनमें क्या-क्या वर्णन है?

---

(१) त्रैराशिक-सम्प्रदायका एक ग्रन्थ
(२) कपिलमुनिकृत अङ्कशास्त्र
(३) सांख्यतत्त्व-सम्बन्धी एक न्यायशास्त्र
(४) नन्दी सूत्र — ४१

उत्तर— जो शास्त्र पाप-आगमनके कारण हैं उन्हे पापश्रुत कहते हैं। वे उनतीस माने गए हैं [1]। उनमे पहले चौबीस तो निमित्त शास्त्र ही हैं। जैसे—

(१) भौमशास्त्र— भूमिकम्प आदिका फल बतानेवाला निमित्तशास्त्र।

(२) उत्पातशास्त्र— रुधिरकी वृष्टि, दिशाओका लाल होना आदि-आदि लक्षणोका शुभाशुभ फल कहनेवाला शास्त्र।

(३) स्वप्नशास्त्र— स्वप्नोका शुभाशुभ फल कहनेवाला शास्त्र।

(४) अन्तरिक्षशास्त्र— आकाशमे होनेवाले ग्रहवेधादिकका शुभाशुभ फल बतानेवाला शास्त्र।

(५) अङ्गशास्त्र— आख, भुज आदि शरीरके अवयवोंके प्रमाण-विशेषका तथा स्पन्दित आदि विकारोका शुभाशुभ फल बतानेवाला शास्त्र।

(७) व्यञ्जनशास्त्र— शरीरके तिल, मष आदिके शुभाशुभ फल बतानेवाला शास्त्र।

(८) लक्षणशास्त्र— स्त्री-पुरुषोके लक्षणोका यानी पद्म, वज्र, अंकुश आदि शरीरके चिन्होका शुभाशुभ फल बतानेवाला शास्त्र।

ये आठो सूत्र, वृत्ति और वार्तिकके भेदसे चौबीस हो जाते हैं। इनमे अङ्गशास्त्रके सिवाय प्रत्येकके एक-एक हजार सूत्र हैं, एक-एक लाख प्रमाण वृत्ति है और वृत्ति की स्पष्टरूपसे व्याख्या करनेवाला वार्तिक एक-एक करोड प्रमाण है। अङ्गशास्त्रमें एक लाख सूत्र एक करोड वृत्ति और वार्तिक अपरिमित है।

(२५) विकथानुयोग— अर्थ और कामके उपायोको बतलाने

---

(१) समवायाङ्ग समवाय २६

वाले कामान्दक—वात्स्यायन आदि शास्त्र।

(२६) विद्यानुयोग— रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विद्याओंकी सिद्धिके उपाय बतलानेवाले शास्त्र।

(२७) मन्त्रानुयोग— मन्त्रो द्वारा सर्प आदिको वशमे करनेका उपाय बतलानेवाले शास्त्र।

(२८) योगानुयोग— वशीकरण आदि योग बतलानेवाले हरमेखलादि शास्त्र।

(२९) अन्यतीर्थिकानुयोग— अन्यतीर्थिको द्वारा अभिमत आचार-क्रियाका व्याख्यान करनेवाले शास्त्र।

हरिभद्रीय-आवश्यकमे चौबीससे आगेके नाम निम्नप्रकारसे मिलते है—

(२५) गन्धर्वशास्त्र— संगीतविद्याविषयक शास्त्र।

(२६) नाट्यशास्त्र— नाटकविधिका वर्णन करनेवाला शास्त्र।

(२७) वास्तुशास्त्र— घर, हाट आदि मकान बनानेकी विधि बतलानेवाला शास्त्र।

(२८) आयुर्वेद— चिकित्सा और वैद्यकसम्बन्धी शास्त्र।

(२९) धनुर्वेद— बाण चलानेकी कला बतलानेवाला शास्त्र।

स्थानाङ्ग स्थान ९-उ ३ सू ६७८ मे पापश्रुतके निम्नलिखित नौ भेद कहे है—

(१) उत्पात— प्रकृतिके विकाररूप सहजरुधिरवृष्टि या राष्ट्रके उत्पात आदिको बतलानेवाला शास्त्र।

(२) निमित्त— भूत-भविष्यत्की बात बतलानेवाला शास्त्र।

(३) मन्त्र— दूसरोंको मार देने या वशमे करनेके मन्त्रोंको बतलानेवाला शास्त्र।

(४) मातङ्गविद्या— जिसके उपदेशसे भोपा आदिके द्वारा

भूत-भविष्यत्‌की बातें बताई जाती हैं वह शास्त्र।

(५) चैकित्सिक— वैद्यकशास्त्र।

(६) कला— लेख आदि जिनमे गणित प्रधान है यावत् पक्षियोके शब्दका ज्ञान आदि। पुरुषकी बहत्तर तथा स्त्रीकी चौसठ कलाएँ।

(७) आवरण— मकान वगैरह बनानेकी विधि बतलानेवाला शास्त्र।

(८) अज्ञान— भारत, काव्य, नाटक आदि लौकिक शास्त्र।

(९) मिथ्याप्रवचन— चार्वाक-नास्तिक आदिके दर्शनशास्त्र।

उपर्युक्त पापश्रुतोमे कइयोका प्रयोग सावद्य है, कइयोकी साधना सावद्य है, कइयोका लक्ष्य सावद्य है, एव कइयोमे मिथ्या प्ररूपणा है अतः इन्हे जैनशास्त्रोमे पापश्रुत कहा गया है। इन्हे पढनेकी बाबतमे मिथ्याश्रुतोके समान ही निर्णय है क्योकि इनमेसे काफ़ी ग्रन्थोके नाम मिथ्याश्रुतोमे आगए हैं।

जैनमुनि इन सभी शास्त्रोका ज्ञान तो कर सकते हैं, किन्तु सावद्यसाधना एव सावद्यप्रयोग नही कर सकते। दशवैकालिक अ. ८ गा० ५१ में कहा है कि जैनमुनिको नक्षत्रविद्या, स्वप्नविद्या, वशीकरणादि योगविद्या, भूत-भविष्यत् बतानेवाली निमित्तविद्या, सर्पादिका विष हरनेवाली मन्त्रविद्या, रोग मिटानेवाली औषधिविद्या आदि-आदि विद्याओका प्रयोग गृहस्थोमे कभी नही करना चाहिए। साधुओमे भी ज्योतिष–वैद्यक आदि उन्ही विद्याओका प्रयोग किया जा सकता है जिनमे किसी भी प्रकारकी सावद्यक्रिया न करनी पडे।

(७) सादिश्रुत
(८) सपर्यवसितश्रुत } आदिसहितको सादि एव अन्त-सहितको सपर्यवसित कहते हैं।

(९) अनादिश्रुत } ऐसे ही आदिरहितको अनादि और
(१०) अपर्यवसितश्रुत } अन्तरहितको अपर्यवसित कहते हैं।

बारह अङ्गरूप भगवान्का श्रुतज्ञान पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे सादि एव सपर्यवसित है तथा द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे अनादि और अपर्यवसित है। विशेष स्पष्टताके लिए इन चारोभेदोको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे समझिए। [1]

द्रव्य से— एक व्यक्तिकी अपेक्षासे सम्यक्श्रुत सादि और सपर्यवसित है क्योंकि अनादिकालसे कोई भी जीव सम्यग्दृष्टि नही होता। जिस दिन से जो व्यक्ति सम्यक्त्वी बनता है, उसीदिनसे उसका ज्ञान सम्यक्श्रुत कहलाता है। अतः वह श्रुत आदिसहित है। तथा एक बार सम्यक्त्व पाकर भी दर्शनमोहके उदयसे व्यक्ति उसे खो बैठता है, तब उसका सम्यक्श्रुत नष्ट होजाता है। इस दृष्टिसे सम्यक्श्रुत अन्तसहित है।

अनेक व्यक्तियोकी अपेक्षासे सम्यक्श्रुत अनादि और अपर्यवसित है क्योंकि ऐसा समय न तो कभी था और न ही कभी होगा, जब ससारमे कोई सम्यक्त्वधारी जीव न हो। सदा थे, सदा हैं और सदा रहेंगे। जब सम्यक्त्वी जीव अनादि-अनन्त हैं तो उनके साथ सम्यक्श्रुत भी अनादि-अनन्त अपने आप सिद्ध हो गया।

क्षेत्रसे— पाँचभरत, पाँच ऐरावत—इन दस क्षेत्रोकी अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि और स-अन्त है, क्योंकि इन क्षेत्रोमे अवसर्पिणीकालके तीसरे आरेके अन्तमे और उत्सर्पिणीकालके तीसरे आरेके प्रारम्भमे जब तीर्थकरदेव केवलज्ञान पाकर सर्वप्रथम श्रुतकी प्ररूपणा एव चार तीर्थकी स्थापना करते हैं, तभीसे सम्यक्श्रुतकी शुरुआत होती है अतः वह सादि है तथा अवसर्पिणीके पाँचवें आरेके अन्तमे और उत्सर्पिणीके

(१) नन्दी सूत्र ४२

अधिक थी ।

(१२) अगमिकश्रुत— जिसमे पाठ सरीखे न हो अर्थात् भला-मण न हो उसको अगमिकश्रुत कहते हैं[1] । इसमे अचाराङ्ग आदि कतिपय कालिकसूत्रोका ग्रहण किया गया है ।

(१३) अङ्गप्रविष्टश्रुत— सर्वज्ञ भगवान अर्थरूप उपदेश देते हैं । उस अर्थको गणधर (उनके मुख्यशिष्य) जो सूत्ररूपसे गूंथते हैं, वे सूत्र अङ्गप्रविष्टश्रुत कहलाते हैं । उनकी संख्या बारह मानी गई है— (१) आचाराङ्ग (२) सूत्रकृताग (३) स्थानाङ्ग (४) समवायाङ्ग (५) भगवती (६) ज्ञाता–धर्मकथाङ्ग (७) उपाशकदशाङ्ग (८) अन्तकृद्दशाङ्ग (९) अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग (१०) प्रश्नव्याकरण (११) विपाक (१२) दृष्टिवाद[2] ।

(१४) अनङ्गप्रविष्टश्रुत– भगवानकी वाणीके आधार पर विशिष्ट-ज्ञानी आचार्य एव स्थविर आदि जो कमसे कम दसपूर्वधारी हो, वे जो ग्रन्थ बनाते हैं, उन्हे अनङ्गप्रविष्ट अर्थात् आचाराङ्गादि बारह अङ्गोसे बाहिरके शास्त्र कहते हैं ।

अनङ्गप्रविष्ट शास्त्र दो प्रकारके होते हैं— [3] आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त । आवश्यकके सामायिक आदि छः अध्ययन हैं । आवश्यक व्यतिरिक्त शास्त्र दो प्रकारके है— उत्कालिक और कालिक ।

दशवैकालिक, कल्पिकाकल्पिक, चुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना आदि उत्कालिक हैं और उत्तराध्ययन, दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प, व्यवहार, निशीथ आदि सूत्र कालिक हैं ।

---

(१) नन्दी सूत्र–४३
(२) नन्दी सूत्र–४४
(३) नन्दी सूत्र–४३

अनङ्गप्रविष्ट शास्त्रोकी सख्याके विषयमें यह मान्यता है कि जिन तीर्थंकरोके समय जितने औत्पातिकी आदि बुद्धिके धारक और प्रत्येक-बुद्ध मुनि होते हैं, उनके जमानेमे उतने ही प्रकीर्णक अर्थात् अनङ्ग-प्रविष्टशास्त्र होते है। जैसे— ऋषभदेव भगवान्के समय चौरासी हजार, मध्य तीर्थंकरोके समय सख्यातहजार एवं भगवान् महावीरके वरतारेमे चौदह हजार प्रकीर्णक-ग्रन्थ थे। एव उतने ही प्रकीर्णक रचनेवाले विशिष्टज्ञानी मुनि थे।

जो हम यह कहा करते हैं कि ऋषभप्रभुके ८४ हजार यावत् महावीरप्रभुके चौदह हजार साधु थे। यह सख्या इस वर्णनके अनुसार प्रकीर्णकार (शास्त्रोंकी रचना करनेवाले) साधुओकी थी। सामान्य साधु तो इससे काफी अधिक संख्यामे होने चाहिए। सारी बातका सार यह है कि अङ्गशास्त्र आचाराङ्ग आदि बारह थे और अङ्गबाह्यशास्त्र आवश्यक, उत्तराध्ययनआदि हजारो थे, लेकिन उस समय लिखनेका रिवाज न होनेके कारण अधिकांश शास्त्र लुप्त हो गए।

प्रश्न ५— जो शास्त्र अभी विद्यमान है वे कब लिखे गए?

उत्तर— वीरनिर्वाण के १६० वर्ष बाद पाटलीपुत्रमे १२ वर्षका दुष्काल पडा। उसके कारण साधुसघ छिन्न-भिन्न सा हो गया। अनेक बहुश्रुत मुनि स्वर्गवासी हो गए। आगमज्ञानकी शृंखला टूट-सी गई। दुर्भिक्ष मिटनेपर साधु-संघने मिलकर ग्यारह अङ्ग सकलित किए। बारहवाँ अङ्ग दृष्टिवाद, जिसके जानकार मात्र एक भद्रबाहुस्वामी थे, जो नेपालमे महाप्राण ध्यानकी साधना कर रहे थे। चतुर्विध सघकी सलाहसे ५०० साधु दृष्टिवाद पढनेके लिए नेपाल गए और एक हजार साधु उनकी सेवा करनेवाले साथ थे।

पूर्वोका[1] अगाधज्ञान पढते-पढते प्राय सभी साधु थक गए मात्र

---

(१) पूर्वोका वर्णन इसी पुञ्जके प्रश्न १४ पर देखो।

एक स्थूलिभद्र मुनि दस पूर्व पढे। बहिनोको चमत्कार दिखानेके लिए एक दिन उन्होने विद्यासे सिंहका रूप बना लिया। भेद पाकर भद्रबाहु-स्वामीने पढाना बन्द कर दिया। फिर विशेष आग्रह करने पर शेष चार पूर्व पढाये तो सही, लेकिन उनका अर्थ नही बताया अत. मूलपाठकी दृष्टिसे अन्तिम चौदहपूर्वधारी स्थूलिभद्रस्वामी ही रहे।

तत्त्व यह है कि भगवान महावीरके बाद सुधर्मास्वामी और जम्बूस्वामी–ये दो आचार्य तो केवलज्ञानी हुए। फिर (१) प्रभव (२) शय्यभव (३) यशोभद्र (४) सभूतिविजय (५) भद्रबाहु और (६) स्थूलिभद्र–ये छः आचार्य चौदहपूर्वधारी हुए, इन्हे श्रुतकेवली भी कहा जाता है। फिर (१) महागिरि (२) सुहस्ती (३) गुणसुन्दर (४) वन्हिस्सह (५) स्वाति (६) श्यामाचार्य (७) शाण्डिल्य (८) समुद्र (९) मगु (१०) धर्म (११) भद्रगुप्त (१२) वज्रस्वामी— ये आचार्य दसपूर्वधारी हुए [1]। वज्रस्वामीके पट्टधर आर्यरक्षितसूरि नौ पूर्व पूर्ण और दसवें पूर्वके २४ यविक जानते थे। आर्यरक्षितके शिष्य दुर्बलिका-पुष्यमित्र नव पूर्व पढे, किन्तु अनभ्यासके कारण वे नववें पूर्वको भूल गए, ऐसे क्रमश आगमज्ञान विस्मृत होता ही गया।

आगमोका दूसरीबार सकलन दो जगह हुआ— मथुरामे और वल्लभीपुरमे। मथुरामे स्कन्दिलाचार्यकी देख–रेखमे था और वल्लभीपुरमे आचार्य नागार्जुनके नेतृत्वमे था। मथुरावाला सकलन माथुरीवाचना एवं वल्लभीपुरवाला वल्लभीवाचना तथा नागार्जुनीयवाचना कहा जाता है। यह कार्य वीर-निर्वाणके ८२७ और ८४० के बीच हुआ। उस समय कण्ठस्थ ज्ञान सकलित करके लिखा गया ऐसा भी कइयोका मत है।

वीर-निर्वाणके बाद ९८० वर्ष अर्थात् विक्रम सवत् ५११ तदनुसार ई० सन् ४५४ के आसपास द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षके कारण

(१) नन्दी–स्थविरावलिके अनुसार

श्रुतज्ञानकी दशा फिर अत्यधिक चिन्तनीय होने लगी। तब वल्लभी-पुरमें श्री देवर्धिगणि ने नेतृत्व [illegible] किया। पूर्ववर्ती माथुरी एवं वल्लभी दोनों ही वाचना में जो आगम जो साधुओंको कण्ठस्थ थे, वे देवर्धिगणिने सुने और [illegible] सहमति करके उन्हें पुस्तकारूढ किया अर्थात् लिखा [1]। कई जगह पाठोंमें कुछ अन्तर मिला, वहां एक पाठको मूल रूपमें मानकर दूसरे पाठका यहां, टीका या चूर्णि आदिमें लिखकर पाठान्तरको स्पष्ट स्वीकार किया। फिर सारे संघने वाचन करके उन आगमोंको श्वेताम्बर-जैनसमाजमें सर्वसम्मत मान्यता दी गई।

इस समय हमें जो आगम प्राप्त हो रहे हैं, वे श्री देवर्धिगणिके संकलित एवं संपादित किए हुए हैं। देवर्धिगणिको पूर्वोंका ज्ञान था।

दिगम्बरोंकी मान्यता है कि वीर-निर्वाणके ६८३ वर्षके बाद मूल-आगमोंका सर्वथा लोप हो गया, किन्तु श्वेताम्बर कहते हैं कि तीन-तीन बार संकलन होनेसे आगमोंका स्वरूप अवश्य बदला है, वे परिमाणकी अपेक्षासे बहुत बड़े थे, अब छोटे हैं। उनमें उत्तरवर्ती घटनाओंका भी समावेश हुआ है फिर भी सिद्धान्तका मौलिकरूप विद्यमान है।

प्रश्न ६— आगमका क्या अर्थ है ?

उत्तर— जिससे जीव-अजीव आदि पदार्थों का ज्ञान हो उसे आगम कहते हैं। ज्ञान मुख्यतया आप्त अर्थात् यथार्थवक्ता एवं विश्वासी पुरुषोंके वचनसे होता है अतः उपचारसे आप्तपुरुषोंके वचनरूप-ग्रन्थ ही आगम हैं [2]। आगम दो प्रकारके माने गए हैं [3]— लौकिक और

(१) माथुरीवाचनाके अनुयायियोंके अनुसार ९८० वें वर्षमें एवं वल्लभीवाचनाके अनुयायियोंके अनुसार ९९३ वें वर्षमें आगम लिखे गए— (कल्पसूत्र सूत्र १४८ के आधारसे)।

(२) प्रमाण नय- तत्त्वालोकालङ्कार परिच्छेद-४-सू-२

(३) अनुयोगद्वार सू १४५

लोकोत्तर। पीछे प्रश्न तीनमे कहे हुए भारत-रामायण आदि लौकिक-आगम हैं और सर्वज्ञभाषित आचाराङ्ग आदि लोकोत्तर-आगम हैं। लौकिकका अर्थ सासारिक या व्यवहार-सम्बन्धी है एव लोकोत्तरका अर्थ लोकमे मिलनेवाले पदार्थोसे उत्तर-श्रेष्ठ या विलक्षण है। तत्त्व यह है कि लौकिकआगम अधिकाश व्यावहारिकशिक्षा देने वाले हैं एव सर्वज्ञभाषित लोकोत्तरआगम उनसे विलक्षण हैं अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान देनेवाले हैं।

सूत्र आदिके भेदसे आगम तीन प्रकारके हैं— सूत्रागम, अर्थागम, तदुभयागम।

सूत्रागम— तीर्थंकरोकी वाणीको जो गणधरादि सूत्ररूपमे गूंथते हैं उसे सूत्रागम कहते हैं। आचाराङ्गादि सूत्रोंके जो मूलपाठ हैं वे सव सूत्रागम हैं।

अर्थागम— सर्वज्ञ भगवान्‌का जो अर्थरूप उपदेश होता है वह अर्थागम है। तीर्थकरदेव अर्थरूप ही ज्ञान दिया करते हैं।

तदुभयागम— सूत्र-अर्थ दोनो रूपोमे जो ज्ञान होता है वह तदुभयागम है।

इन तीनो प्रकारके आगमोको रहस्ययुक्त जाननेवाले और दूसरोको पढानेवाले ज्ञानी पुरुष क्रमशः सूत्रधर, अर्थधर एव तदुभयधर कहे जाते हैं[1]। व्यक्तिकी अपेक्षासे आगम पुन. तीन प्रकार के हैं— आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम।

आत्मागम— गुरुके उपदेश विना जो आगमज्ञान स्वयं उत्पन्न होता है, वह अपने स्वामीके लिए आत्मागम कहलाता है। जैसे—तीर्थकरोंके लिए अर्थागम आत्मागम रूप है और गणधरोके लिए सूत्रागम आत्मागम रूप है क्योंकि वे दोनो क्रमश. उन दोनोंसे स्वयं

(१) स्था २ उ ३ सू - १६६

उत्पन्न होते है।

अनन्तरागम— आत्मागमधारी पुरुषसे आगमज्ञान जिसे प्राप्त होता है उसके लिए वह ज्ञान अनन्तरागम कहा जाता है। जैसे-गौतमादि गणधरोके लिए भगवान् महावीरसे प्राप्त अर्थागम अनन्तरागमरूप है तथा जम्बूस्वामी आदि गणधरशिष्योके लिए गौतमादि गणधरोमे मिला हुआ सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

परम्परागम— साक्षात् आत्मागमधारी पुरुषसे प्राप्त न होकर जो आगमज्ञान उनके शिष्यो-प्रशिष्योसे आता है उसे परम्परागम कहते हैं। जैसे जम्बूस्वामी आदि गणधर-शिष्योके लिए अर्थागम परम्परागमरूप है और प्रभवस्वामी आदि पश्चाद्वर्ती सभी साधुओंके लिए अर्थागम सूत्रागम दोनो ही परम्परागमरूप है[1]। उपर्युक्त विवेचनका सार यह है कि आत्मासे उत्पन्न आगमज्ञान आत्मागम है, आत्मागमधारी गुरुसे प्राप्त आगमज्ञान अनन्तरागम है और आगेवाली पीढीके लिए वही परम्परागम है।

प्रश्न ७— आगमसाहित्य कितने विभागोमें विभक्त है?

उत्तर— मुख्यतया चार विभागोमे विभक्त किया जाता है— (१) चरणकरणानुयोग (२) धर्मकथानुयोग (३) गणितानुयोग (४) द्रव्यानुयोग।

सूत्र और अर्थके उचित सम्वन्धको अनुयोग कहते हैं यह उपक्रमादि द्वारा सक्षिप्त सूत्रको महान् अर्थके साथ जोडता है[२]। अनुयोग वास्तवमे सूत्रकी व्याख्या करनेकी विधि है अथवा सूत्र रूपी नगरमे प्रवेश करने का मार्ग है। उपर्युक्त चार अनुयोगोका अर्थ इस

---

(१) अनुयोगद्वार प्रमाणाधिकार सूत्र-१४४

(२) उपक्रमादिका अर्थ इसी पुञ्जके प्रश्न १९ में अनुयोगद्वारसूत्रके परिचयमें दिया गया है।

प्रकार है [1]।

(१) चरणकरणानुयोग— व्रत, श्रमणधर्म, सयम, वैयावृत्य, ब्रह्मचर्यगुप्ति, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और कषायनिग्रह-ये चरण हैं तथा पिण्डविशुद्धि, समिति, भावना, प्रतिमा, इन्द्रियनिग्रह, प्रतिलेखन, गुप्ति और अभिग्रह-ये करण हैं। चरण-करण अर्थात् साधुके आचार-सम्बन्धि विवेचन करनेवाले आचाराङ्गादिसूत्र चरणकरणानुयोग हैं।

धर्मकथानुयोग— धर्मकथाके रूपसे तत्त्वज्ञान देनेवाले ज्ञाता, उपाशकदशा आदि सूत्र धर्मकथानुयोग हैं।

(३) गणितानुयोग— गणितकी मुख्यतासे वर्णन करनेवाले सूत्र गणितानुयोगमे आते है। सूर्यप्रज्ञप्ति एव भगवतीके भागे आदि इसीमे माने जाते हैं।

(४) द्रव्यानुयोग— द्रव्य-गुण-पर्याय एव गम्भीर दार्शनिक-विवेचन करनेवाले शास्त्र द्रव्यानुयोग कहलाते हैं। सूत्रकृताङ्ग व दृष्टिवाद जैसे शास्त्रोका इसीमे समावेश होता है।

ऐसे कहाजाता है कि पहले प्रत्येक आगम-शास्त्रसे चारो अनुयोग समझाये जाते थे, किन्तु शिष्योकी बुद्धिमे क्रमश कमी होती देखकर श्रीआर्यरक्षितसूरिने आगमोको चार अनुयोगोके रूपमे विभक्त कर दिया। इससे पढने एव पढाने वालोंके लिए काफी सुविधा हो गई।

प्रश्न ८— इस समय कितने आगम विद्यमान हैं?

उत्तर— शास्त्रोमे ८४ आगमोके नाम मिलते हैं[2]। उनमे कई उपलब्ध हैं और कई नही भी।

प्रश्न ९— प्रामाणिकरूपसे कितने आगम माने जाते हैं?

उत्तर— केवलज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदहपूर्वधारी

---

(१) दशवैकालिकसूत्र सटीक निर्युक्ति गाथा ३ पृष्ठ ३

(२) नन्दी सूत्र ४३-४४ तथा स्थानाङ्ग व व्यवहार सूत्रमें

यावत् दसपूर्वधारियोके बनाए हुए आगम प्रामाणिक कहे जाते है। इनसे नीचे वालोके अर्थात् नव-आठ-सात आदि पूर्वधारियोके रचे हुए आगम वे ही प्रामाणिक हो सकते है जो आचाराङ्गादि बारह अङ्ग-शास्त्रोसे अविरुद्ध हो।

अभी श्वेताम्बारजैनोमे मुख्य तीन शाखायें हैं— मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापन्थी। मूर्तिपूजक प्राय. ४५ आगमोको प्रामाणिक मानते हैं तथा स्थानकवासी-तेरापन्थी बत्तीसको मान्य करते हैं।

प्रश्न १०— बत्तीस आगम कौन-कौनसे हैं?

उत्तर— ग्यारहअङ्ग, बारहउपाङ्ग, चारमूल, चारछेद और एक आवश्यक ऐसे बत्तीस है।

प्रश्न ११— आगमोंको अङ्ग-उपाङ्ग आदि क्यों कहा गया?

उत्तर— नन्दीसूत्रकी टीकामे श्रुतज्ञानको पुरुषकी उपमा दी गई है। जो पुरुष होगा उसके अङ्ग-उपाङ्ग भी होगे, अङ्ग-उपाग होगे वहा उनके मूल-जडें भी होगी तथा रोग होने पर उनका छेदन-चीरफाड भी करना पडेगा। सभव है इसी कल्पनाके अनुसार जैनआगमोके अङ्ग-उपाङ्ग आदि नाम रखे गए हो।

पुरुषके जैसे दो पैर २, दो जंघाएँ ४, दो उरु-साथलें ६, दो गात्रार्ध-पसवाडे ८, दो भुजाएँ १०, ग्रीवा-गर्दन ११, शिर १२-ये बारह अङ्ग होते हैं, वैसे ही श्रुत-पुरुषके आचार आदि बारह अङ्ग हैं। इसीलिए इन्हे अङ्गप्रविष्ट नामसे कहा गया है। जैसे-पुरुषके दोकान २, दोनाक ४, दो आँखें ६, दो जघाएँ ८, दो हाथ १०, दो पैर (दोनो पैरोकी अङ्गुलिया) १२-ये बारह उपाग होते है[१] वैसे श्रुत-पुरुषके भी औपपातिक आदि बारह सूत्र उपाग माने गए हैं।

---

(१) निशीथचूर्णि उ-१

प्रश्न १२— अङ्ग-उपाङ्गादि शास्त्रोंके नाम बतलाइये ?

उत्तर— **अङ्गसूत्र १२**

१	१ आचाराङ्ग	१८	६ चन्द्रप्रज्ञप्ति
२	२ सूत्रकृताराङ्ग	१९	७ सूर्यप्रज्ञप्ति
३	३ स्थानाङ्ग	२०	८ निरयावलिका
४	४ समवायाङ्ग	२१	९ कल्पावतंसिका
५	५ भगवती	२२	१० पुष्पिका
६	६ ज्ञाता-धर्मकथा	२३	११ पुष्पचूलिका
७	७ उपाशकदशा	२४	१२ वृष्णिदशा
८	८ अन्तकृद्दशा		**मूलसूत्र ४**
९	९ अनुत्तरोपपातिकदशा	२५	१ दशवैकालिक
१०	१० प्रश्नव्याकरण	२६	२ उत्तराध्ययन
११	११ विपाक	२७	३ अनुयोगद्वार
१२	१२ दृष्टिवाद (व्युच्छिन्न)	२८	४ नन्दी
	उपाङ्गसूत्र १२		**छेदसूत्र ४**
१३	१ औपपातिक	२९	१ निशीथ
१४	२ राजप्रश्नीय	३०	२ व्यवहार
१५	३ जीवाभिगम	३१	३ बृहत्कल्प
१६	४ प्रज्ञापना	३२	४ दशाश्रुतस्कन्ध
१७	५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति		१ आवश्यक[1]

(१) श्वेताम्बर मूर्तिपूजकजैनोंके मान्य ४५ सूत्रोंमें ३२ तो ये ही है, शेष १३ के नाम निम्नलिखित हैं— १ चतु शरण, २ आतुरप्रत्याख्यान, ३ महाप्रत्याख्यान ४ भक्तपरिज्ञा ५ तन्दुलवैचारिक, ६ संस्तारक, ७ गच्छाचार, ८ गणिविद्या, ९ देवेन्द्रस्तव, १० मरणसमाधि, (ये दस प्रकीर्णक कहलाते हैं ।) ११ महानिशीथ, १२ पिण्डनिर्युक्ति तथा ओघ-निर्युक्ति १३ और जीतकल्प ।

बारह अङ्गोंके अतिरिक्त उपांगादि सभी आगम अनङ्गप्रविष्ट है। नन्दीसूत्रमे अङ्गप्रविष्ट और अनङ्गप्रविष्ट ऐसे दो ही शब्दोका प्रयोग है। उपाङ्ग, मूल, छेद आदि नामोकी स्थापना पीछेसे की गई है।

प्रश्न १२— अङ्ग-उपाङ्ग आदि आगमोंमें क्या वर्णन है ?

उत्तर— सारा वर्णन तो बहुत लम्बा-चौडा है, किन्तु उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है—

(१) आचाराङ्ग— आचाराङ्गके दो श्रुतस्कन्ध-भाग है। पहले श्रुतस्कन्धके नौ अध्ययन हैं, जिनमे सातवा महाप्रज्ञाअध्ययन व्युच्छिन्न है [1]। शेष अध्ययनोमे हिंसाके कारण और फल, लोकका स्वरूप, सम्यक्त्वका स्वरूप, साधुमे परिषह सहन करनेका साहस आदि-आदि वर्णन हैं।

दूसरे श्रुतस्कन्धमे सोलह अध्ययन हैं, उनमे साधुको आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, मकान आदि लेनेकी विधि, तथा बोलने-चलनेकी विधि एवं भगवान् महावीरका जीवनचरित्र वर्णित है।

इस शास्त्रके अठारह हज़ार पद थे,[2] किन्तु इस समय मात्र २५५४ श्लोक विद्यमान हैं।[3]

---

(१) कई इस अध्ययनको आठवां एवं कई नौवां भी मानते है। इसमें आकाशगामिनी विद्या थी, वह श्री वज्रस्वामीने निकाल दी।

(२) दिगम्बर गोम्मटसारमें १६३४ करोड ८३ लाख ७ हज़ार ८८८ अक्षरोंका एक पद माना गया है। तथा श्वेताम्बरग्रन्थोमें कहीं-कहीं ८४० श्लोकोंका पद लिखा है। (पूज्य श्री हस्तीमलजी-अनुवादित नन्दी-चतुर्थ परिशिष्टसे)

(३) अचारांगादि सूत्रोंकी पदसंख्या नन्दी एवं उसकी टीकाके आधारसे तथा वर्तमान श्लोकसंख्या जैनसिद्धान्तबोलसंग्रह भाग ७ पृष्ठ २३ के आधारसे दी गई है।

(२) सूत्रकृताङ्ग— इसके दो श्रुतस्कन्ध है। पहलेमे १६ अध्ययन है। उनमे क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी व अज्ञान-वादी आदिकी मान्यताओका दिग्दर्शन करवाकर उनका जैनमान्यताके अनुसार समाधान किया गया है तथा अट्ठानवें पुत्रोको ऋषभदेव भगवान्‌का उपदेश, नरकके दु.ख एव महावीरभगवान्‌के गुण आदि-आदि अनेक बावतोका वर्णन है।

दूसरे श्रुतस्कन्धमे ७ अध्ययन हैं। पुष्करणी-कमलका दृष्टान्त, आर्द्रकुमार और गोशालककी चर्चा गौतमस्वामी और उदकपेढाल-पुत्रका सवाद आदि आदि वर्णित हैं। इस शास्त्रके छत्तीस हजार पद थे, अभी इक्कीस-सौ श्लोक विद्यमान हैं।

(३) स्थानाङ्ग— इसके दस स्थान-अध्ययन है। उनमे क्रमश विश्वस्थित एक-दो-तीन यावत् दस बावतोका वर्णन है। जैसे-आत्मा एक है, बन्धन दो हैं, गुप्तिया तीन हैं, कषाय चार हैं, महाव्रत पांच हैं, काय छ हैं, भयस्थान सात हैं, मदस्थान आठ हैं, ब्रह्मचर्यकी गुप्तिया नव हैं एव दान दस है। चौथे स्थानमे अनेक चौभगियाँ हैं, उनमे अद्भुत तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। इस शास्त्रके ७२ हज़ार पद थे। वर्तमानमे ३७०० श्लोक हैं।

(४) समवायाङ्ग— इसमे स्थानागकी तरह एकसे लेकर १०० तक भेद वाले बोल एक-एक भेदकी वृद्धि करते हुए क्रमश. बतलाए हैं। फिर सख्यात, असख्यात एवं अनन्त वस्तुओका और अन्तमे उत्तमपुरुषोका अधिकार है। इसके एक लाख ४४ हज़ार पद थे, अब १६६७ श्लोक विद्यमान हैं।

(५) भगवती-व्याख्याप्रज्ञप्ति— इसके ४१ शतक व दस हजार उद्देशक हैं। इसमे गौतमस्वामीके पूछे हुए छत्तीसहजार प्रश्न हैं। स्कन्दक, शिवराजऋषि, ऋषभदत्त, सुदर्शनसेठ, गागेय, रोहक, सुनक्षत्र, सर्वानुभूति एवं सिंह आदि साधुओका, देवानन्दा, जयन्ती,

सुदर्शना आदि साध्वियोका, शंख, पुष्कली, कार्तिकसेठ आदि श्रावकोका; रेवती, सुलसा आदि श्राविकाओका, तथा तामली, पूरण, गोशालक, जमालि आदि अन्यमतियोका वर्णन है। इनके अतिरिक्त गमा, सजया-नियठा आदि थोकडे और गागेयजीके भागे तो भगवतीसूत्रके जगत्-प्रसिद्ध हैं ही। इस सूत्रके दो लाख अठासीहज़ार पद थे, किन्तु अब पन्द्रहहज़ार सातसौ इकावन श्लोक हैं। इस वक्त सब आगमोमे बड़ा यही है।

(६) ज्ञाता-धर्मकथा— इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथमश्रुत-स्कन्धके उन्नीस अध्ययन हैं। उनमे क्रमशः (१) मेघकुमार (२) धन्नासार्थवाह (३) मोरके अण्डे (४) कछुआ (५) शैलकराजर्षि (६) तुम्बा (७) रोहणी (८) मल्लिनाथ (९) जिनपाल-जिनरक्षित (१०) चन्द्रमा (११) दावदववृक्ष (१२) उदकज्ञात (१३) दर्दुर (१४) तेतली पुत्र (१५) नन्दीफल (१६) द्रौपदी (१७) आकीर्णजातिके घोडे (१८) सुषमाकुमारी (१९) पुण्डरीककण्डरीक-ये उन्नीस कथायें हैं एवं इन कथाओ द्वारा तत्त्वज्ञान दिया गया है।

दूसरे श्रुतस्कन्धमे २०६ अध्ययन हैं। उनमे श्री पार्श्वनाथ भगवान्-की २०६ शिथिलाचारणी-साध्विया जो संयमसे विराधक होकर इन्द्राणिया बनी, उनकी कथायें हैं। इस शास्त्रमे ५ लाख ७६ हज़ार पद एवं साढे तीन करोड धर्म कथाएँ थी। इस समय ५५०० श्लोक और २२५ कथाएँ विद्यमान हैं।

(७) उपाशकदशा— इस शास्त्रके दश अध्ययन हैं, उनमे क्रमसे (१) आनन्द (२) कामदेव (३) चुल्लनीपिता (४) सूरदेव (५) चुल्लशतक (६) कुण्डकौलिक (७) सकडालपुत्र (८) महाशतक (९) नन्दनीपिता (१०) सालहीपिता-इन दस व्यक्तियोका वर्णन है। ये सभी भगवान महावीरके श्रावक थे। सभीने श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएँ स्वीकार की थी, उनमे कईयोको भीषण उपसर्ग भी उत्पन्न हुए थे।

अन्तमे अनशन करके सभी प्रथम स्वर्गमे चार पल्यकी आयुवाले देव वने एव वहासे च्यवकर महाविदेहक्षेत्रमे जन्म लेकर मोक्ष जाएँगे। इन श्रावकोंके जीवन बहुत ही त्यागमय एव आदर्श थे। इस सूत्रके ११ लाख ५२ हजार पद थे, अब ८१२ श्लोक हैं।

(८) अन्तकृद्दशा— इस शास्त्रमे आठवर्ग एव ६० अध्ययन हैं। उनमे अन्त समय केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष जाने वाले ६० जीवोका वर्णन है।

पहले वर्गमे अन्धकवृष्णिके गौतम, समुद्र आदि दश पुत्रोका मोक्षगमन है। दूसरे वर्गमे अन्धकवृष्णिके अक्षोभ, सागर, समुद्र-विजय आदि आठ पुत्रोका, वर्णन है। तीसरे वर्गमे सुलसाके छः पुत्र वसुदेवजीके सारण–गजसुकुमाल ऐसे दो पुत्र एव अन्य पाच जीवोका वर्णन है। चौथे वर्गमे जाली, मयाली, प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध आदि दस जीवोका वर्णन है। पाचवें वर्गमे कृष्णकी आठ पटरानियो एवं शाम्बकुमारकी दो रानियोका वर्णन है। छठे वर्गमे मकाई, अर्जुन-माली, अतिमुक्तक आदि सोलह जीवोका जीवन है। सातवें वर्गमे श्रेणिकराजाकी नन्दा आदि तेरह रानियोकी और आठवें वर्गमे काली आदि दस रानियोकी आत्मसाधना है। इन रानियोंने रत्नावलि–कनकावलि आदि विविध तपस्याएँ की थी। इस शास्त्रके २३ लाख चार हजार पद थे। अब ७६० श्लोक हैं।

(९) अनुत्तरोपपातिकदशा— इस शास्त्रमे उन तेतीस महर्षियोका वर्णन है, जो कुछ कर्म अवशिष्ट रहजानेसे अनुत्तरविमानमे (२१ से २६ वें स्वर्ग तक) उत्पन्न हुए एव भवान्तरमें मोक्ष जाएँगे। इस शास्त्रके तीन वर्ग एव तेतीस अध्ययन हैं। पहले दो वर्गोमें जाली, मयाली विहल्ल, अभयकुमार आदि श्रेणिकराजाके तेईस पुत्रोका वर्णन है और तीसरे वर्गमें धन्नामुनि, जिनको भगवान् महावीरने

चौदह हजार साधुओमे उत्कृष्ट कहा था, उनका तथा अन्य नौ जीवोका आदर्शजीवन है। प्रस्तुत सूत्रके ४६ लाख ८ हजार पद थे, अब २६२ श्लोक है।

(१०) प्रश्नव्याकरण— इस शास्त्रके दो श्रुतस्कन्ध हैं और दश अध्ययन हैं। पहले श्रुतस्कन्धमे हिंसा आदि पाच आस्रवोका और दूसरेमे अहिंसा आदि पाच सवरोका सुविस्तृत विवेचन है। इस सूत्रमें प्रश्नविद्या एव ६२ लाख १६ हजार पद थे, वर्तमानमे १३०० श्लोक हैं।

(११) विपाक— इसके दो श्रुतस्कन्ध और बीस अध्ययन हैं। पहले श्रुतस्कन्धमे मृगालोढ़ा आदि दस जीवोकी जीवनियाँ हैं, जिन्होंने पूर्वजन्ममे घोर पापोका उपार्जन किया और फलस्वरूप इस जन्ममे महादुःखी हुए। दूसरे श्रुतस्कन्धमे सुबाहुकुमार आदि उन दस जीवोका वर्णन है, जिन्होने पूर्वजन्ममे सुपात्रदान देकर विशिष्ट पुण्योका उपार्जन किया एवं इस जन्ममे अत्यधिक सुख प्राप्त हुए। पहले श्रुतस्कन्धको दुःखविपाक और दूसरे श्रुतस्कन्धको सुखविपाक कहा जाता है। इसके एक करोड़ ८४ लाख ३२ हजार पद थे, अब १२५० श्लोक हैं।

(१२) दृष्टिवाद— इसमे सभीनयोकी दृष्टियोंसे पदार्थोका वर्णन किया गया है। इसके पाच विभाग हैं[१]— (१) परिकर्म (२) सूत्र (३) पूर्वगत (४) अनुयोग (५) चूलिका।

(१) परिकर्म— परिकर्मका अर्थ है योग्यता उत्पन्न करना। जैसे—गणितशास्त्रमे संकलनादि (जोड़, गुणा, बाकी, भाग आदि) १६ परिकर्मोको समझनेवाला शेष—गणितशास्त्रको ग्रहण करने योग्य होता है, वैसे उक्त परिकर्मश्रुतके अर्थको समझाहुआ व्यक्ति ही दृष्टि-वादके अन्यश्रुतको ग्रहण करसकता है। इसलिए परिकर्मको पहले कहा

---

(१) नन्दी सूत्र ५६

है। इसके सिद्धश्रेणिका-मनुष्यश्रेणिका आदि सात भेद तो मूल हैं और उत्तर भेद ८३ है।

(२) सूत्र— इसमे ऋजुसूत्र, परिणतापरिणत, बहुभङ्गिक आदि बाईस प्रकारके सूत्रोका वर्णन है।

(३) पूर्वगत— इसमे उत्पाद आदि चौदह पूर्वोका समावेश होता है। पूर्वोका परिचय आगे दिया जाएगा।

(४) अनुयोग— यह दो प्रकारका है— मूलप्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग। मूलप्रथमानुयोगमे अरिहन्त भगवान्‌के पूर्वभव, जन्म, दीक्षा, तपस्या, केवलज्ञानकी उत्पत्ति, तीर्थप्रवर्तन, गण, गणधर आदि सपूर्ण ऋद्धिका वर्णन है।

गण्डिकानुयोगमे कुलकर, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, दशार्ह (समुद्रविजयादि) बलदेव, वासुदेव, गणधर आदिका विस्तृत वर्णन है।

(५) चूलिका— इसमे पूर्वोके ऊपर जो चूलिकायें हैं, उनका वर्णन हैं। किस पूर्वके ऊपर कितनी चूलिकायें है, यह पूर्वोके विवेचनमे बताया जाएगा।

प्रश्न १४— अब यह बतलाइए कि पूर्वोका नाम पूर्व क्यों रखा गया एवं उनमें क्या-क्या वर्णन है?

उत्तर— इसके विषयमे दो मत है— कइयोका कहना है कि भगवान् महावीरके पूर्व-पहले ही से यह ज्ञान चला आ रहा था तथा कइयोका मत है कि दूसरे सभी शास्त्रोंसे इनकी रचना पूर्व-पहले हुई थी, इसलिए इन्हे पूर्व कहा गया। इनका अगाधज्ञान पढना हरएकके लिए अशक्य था। उस समय कई साधु ग्यारह अङ्ग पढते थे, कई ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्व पढते थे एवं कई सम्पूर्ण बारह अङ्गोका अध्ययन करते थे। साध्वियोके लिए पूर्वोका ज्ञान पढना निषिद्ध है[1]।

(1) विशेषावश्यकभाष्य ५५५

चतुर्दशपूर्वधरोका महत्त्व अधिक रहा है, उन्हे श्रुतकेवली भी कहा गया है। पूर्वोंके नाम[1] और विषय इस प्रकार हैं—

(१) उत्पादपूर्व— इसमे द्रव्यो और पर्यायोकी उत्पत्तिको लेकर प्ररूपणाकी गई है। इसके एक करोड पद हैं तथा दस वस्तुएँ एवं चार चूलिका-वस्तुएँ हैं[2]।

(२) आग्रायणीयपूर्व— इसमे द्रव्य, पर्याय एव जीवोंके परिमाणका वर्णन है। ९६ लाख पद हैं। १४ वस्तु एव बारह चूलिका-वस्तु है।

(३) वीर्यप्रवादपूर्व— इसमे सकर्म-अकर्म जीव तथा अजीवोकी शक्तिका वर्णन है। इसके सत्तरलाख पद, आठ वस्तु एव आठ चूलिका-वस्तु हैं।

(४) अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व— इसमें संसारमें धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएँ विद्यमान हैं तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान है, उन सबका वर्णन है। इसके साठ लाख पद, अठारह वस्तु एव दस चूलिकावस्तु हैं।

(५) ज्ञानप्रवादपूर्व— इसमें मतिज्ञान आदि पाचो ज्ञानोका विस्तृत वर्णन है। एक कम एक करोड पद एव बारह वस्तु हैं।

(६) सत्यप्रवादपूर्व— इसमें दस प्रकारके सत्यका विस्तृत वर्णन है, एक करोड छः पद एव दो वस्तु है।

(७) आत्मप्रवादपूर्व— इसमे अनेक नय तथा मतोकी अपेक्षासे आत्माका निरूपण है। छब्बीस करोड पद और सोलह वस्तु हैं।

(८) कर्मप्रवादपूर्व — इसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदोसे आठ कर्मोंका सुविस्तृत वर्णन है। एक करोड

(१) नन्दी सूत्र ५६ तथा समवायाङ्ग स. १४. सू. ४८

(२) अध्यायको वस्तु और अवान्तर-अध्यायको चूलिकावस्तु कहते हैं।

अस्सी लाख पद और तीस वस्तु है ।

(९) प्रत्याख्यानपूर्व— इसमे प्रत्याख्यानोका भेद-प्रभेद पूर्वक वर्णन है । चौरासी लाख पद और बीस वस्तु हैं ।

(१०) विद्यानुप्रवादपूर्व— इसमे विविध प्रकारकी विद्या एव सिद्धियोका वर्णन है । एक करोड दस लाख पद और पन्द्रह वस्तु है ।

(११) अवन्ध्य (कल्याण) पूर्व— इसमे तप-संयम आदि शुभ कर्म एव प्रमाद आदि अशुभ कर्म-ये दोनो ही प्रकारके कर्म अवश्य शुभ-अशुभ फल देते है, यह बतलाया है । छब्बीस करोड पद और बारह वस्तु है ।

(१२) प्राणायुप्रवादपूर्व— इसमे दस प्राण एवं आयु आदिका भेदप्रभेदपूर्वक वर्णन है । एक करोड छप्पन लाख पद और तेरह वस्तु है ।

(१३) क्रियाविशालपूर्व— इसमे कायिकी, अधिकरणकी आदि अशुभक्रियाओका तथा सयममें उपकार करनेवाली शुभक्रियाओका वर्णन है । नौ करोड पद और तीस वस्तु हैं ।

(१४) लोकबिन्दुसारपूर्व— शरीरकी सभी धातुओमें जैसे बिन्दु अर्थात् वीर्य श्रेष्ठ है, वैसे ही लोकमें इस शास्त्रका श्रुतज्ञान सर्वश्रेष्ठ होनेसे इसका नाम लोकबिन्दुसार है । इसमे लब्धियोका स्वरूप एवं विस्तार है तथा कइयोंके मतानुसार इसमे सर्व अक्षरोका सन्निपात अर्थात् उत्पत्ति एव लोकके सारभूतपदार्थोका वर्णन है । साढे बारह करोड पद एवं पच्चीस वस्तु है [१] ।

---

(१) पूर्वोके ज्ञानकी अगाधता दिखलानेके लिए प्राचीन परम्परा में यह भी कल्पना की जाती रही है कि चौदह पूर्वोके ज्ञानको लिखनेके लिए १६३८३ हाथी जितने स्याहीके ढेरकी आवश्यकता पड़ती है ।

इस समय भरतक्षेत्रमे दृष्टिवाद अङ्ग (जिसके अन्दर चौदह पूर्व हैं) व्युच्छिन्न हो गया है।

महाविदेहक्षेत्रमें आचाराङ्ग आदि सभी अङ्गशास्त्र शाश्वत रहते हैं।

प्रश्न १९— वारह अङ्गोका वर्णन तो समझमे आ गया अब शेष आगमोंका भी परिचय दीजिये ?

उत्तर— आचाराङ्ग आदि वारह अङ्गोके औपपातिक आदि वारह सूत्र क्रमशः उपाग हैं। उनका परिचय इस प्रकार है—

(१) औपपातिक (उववाई)— इस सूत्रमे कोणिकराजाकी वन्दनविधि, भगवान् महावीरका समवसरण, वारह प्रकारका तप, साधु-श्रावकोंके गुण, केवलिसमुद्घात, करणोके फल, तथा मोक्षके सुख आदि-आदि विषयोका सुन्दर वर्णन है। नगर, उद्यान, राजा, रानी आदिका वर्णन अन्य सूत्रोमे प्राय. इसी सूत्रके अनुसार किया जाता है। इसके मूल श्लोक १६०० है।

(२) राजप्रश्नीय (रायपसेणिय) — इसमें श्री पार्श्वनाथ भगवान्के संतानिक— शिष्य श्री केशीकुमारश्रमण तथा प्रदेशीराजाके प्रश्नोत्तर हैं। इसके मूल श्लोक २१०० हैं।

(३) जीवाभिगम— इसमे जीवोंके चौबीस दण्डक, अवगाहना, आयुष्य, अल्पबहुत्व, मुख्यरूपसे ढाई द्वीप तथा सामान्यरूपसे सभी द्वीप-समुद्र आदि-आदि विषयोका वर्णन है एव विजयपोलियेका अधिकार है। इसके ४७५० श्लोक हैं और नव प्रतिपत्ति-अध्ययन हैं।

(४) प्रज्ञापना (पन्नवणा)— इसमें जीव-अजीवके भेद, जीवोकी आयु, व्युत्क्रान्ति, सज्ञा, योनि, भाषा, शरीर, इन्द्रिय, लेश्या, अवगाहना, सम्यक्त्व, क्रिया, कर्मप्रकृति, कर्मबन्ध, कर्मवेदना, आहार,

उपयोग आदि–आदि तात्त्विक विषयोका वर्णन है। बासठिया[१] अल्पावहुत्व, कर्मप्रकृति आदि अनेक थोकडे इसी सूत्रसे निकलते हैं। इसके ३६ पद अर्थात् अध्ययन हैं और ७७८७ श्लोक हैं। इस शास्त्रके कर्त्ता दसपूर्वधर श्यामाचार्य माने जाते है। ऐसे भी कहा जाता है कि उनके दर्शनार्थ इन्द्र आए थे।

(५) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति— इसमे जम्बूद्वीपके अन्दर रहे हुए भरत आदि क्षेत्र, वैताढ्य आदि पर्वत, पद्म आदि द्रह, गङ्गा आदि नदियाँ, ऋषभ आदि कूट, छ आरे युगलिकमनुष्य, ऋषभप्रभुका जीवन, भरत चक्रवर्तीकी ऋद्धि तथा षट् खण्डकी साधना एव ज्योतिषीदेवोका अधिकार आदि–आदि विषय वर्णित है। इसमे दस अधिकार और ४१४६ श्लोक हैं।

(६–७) चन्द्रप्रज्ञप्ति— सूर्यप्रज्ञप्ति— इनमे चन्द्रमा-सूर्यकी ऋद्धि, मण्डल, गति, गमन, सवत्सर, वर्ष, पक्ष, मास, तिथि, नक्षत्रोका कालमान, कुल और उपकुलके नक्षत्र तथा ज्योतिषीदेवोके सुख वगैरहका वर्णन है। इनके बीस–बीस प्राभृत-अध्ययन और २२००–२२०० श्लोक हैं। कइयोकी ऐसी भी मान्यता है कि चन्द्रप्रज्ञप्ति अभी अप्राप्य है। वल्लभी एव मथुरा ऐसे दो स्थानोंमे लिखे जानेके कारण सभवत. एकके ही दो नाम हैं— क्योंकि प्रारम्भकी कुछ पक्तियोंके अतिरिक्त दोनोके पाठोमे प्राय अन्तर प्रतीत नही होता।

(८) निरयावलिका (कल्पिका) — इनमे अपने पुत्र कोणिकके कारण श्रेणिक राजाकी आत्महत्या, हार–हाथीके लिए महाशिलाकण्टक और रथमूसल नामके संग्राम, दो दिनोमे एक करोड अस्सीलाख मनुष्योका घमसान तथा श्रेणिकके काली आदि दस पुत्रोकी मृत्यु आदि–आदि वर्णित हैं।

---

(१) इनके अधिकांश थोल इस सूत्रके हैं।

(९) कल्पावतंसिका— इसमे कालीकुमारके पद्म, महापद्म आदि दस पुत्रोका वर्णन है। ये सभी दीक्षा लेकर देवलोकमे गए थे।

(१०) पुष्पिका— इसमें क्रमश. १ चन्द्र २ सूर्य ३ शुक्र ४ बहु-पुत्रिका देवी ५ पूर्णभद्र ६ मणिभद्र ७ दत्त ८ शिव ९ वल १० अना-दृष्टि-इन देवोके पूर्वजन्मोका वर्णन है।

(११) पुष्पचूलिका— इसमे क्रमशः १ श्री २ ह्री ३ धृति ४ कीर्ति ५ बुद्धि ६ लक्ष्मी ७ इला ८ सुरा ९ रस १० गन्ध इन देवियोके पूर्वजन्मोका वर्णन है। निरयावलिका आदि चारो सूत्रोके दस-दस अध्ययन हैं।

(१२) वृष्णिदशा— इसके बारह अध्ययन हैं। उनमे बलभद्रजी के निषध आदि बारह पुत्रोका वर्णन हैं। सभी सयम पालकर सर्वार्थ-सिद्धिमहाविमानमें देवता बने एव वहासे महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्ष जाएँगे। निरयावलिका आदि पाचो सूत्रोका एक समूह है, इन्हे पाच निरयावलिका भी कह दिया करते हैं। इन पाचोके मूल श्लोक ११०० हैं।

चार मूलसूत्र

(१) दशवैकालिक— इस सूत्रको चौदहपूर्वधारी श्री शय्यंभव सूरिने अपने पुत्र मनक-शिष्यके लिए चौदह पूर्व तथा अङ्गसूत्रोंसे दोहन करके निकाला था। यह कार्य दोपहरसे लगाकर विकालवेला अर्थात् दिन अस्त होनेके समय तक चला अतः इसका नाम दशवैकालिक हुआ।

चौथा छज्जीवणीय अध्ययन सातवें आत्मप्रवाद पूर्वसे, पाँचवा पिण्डेषणा-अध्ययन आठवें कर्मप्रवाद पूर्वसे, सातवां वाक्यशुद्धि-अध्ययन छठे सत्यप्रवादपूर्वसे, और शेष अध्ययन नौवें प्रत्याख्यानपूर्वसे

उद्धृत किये गए हैं। इस सूत्रके दस अध्ययन एवं दो चूलिकायें हैं। मूल श्लोक ७०० हैं।

(२) उत्तराध्ययन— इस सूत्रमे छत्तीस अध्ययन हैं। इसके अध्ययन उत्तर अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, इसलिए इसका नाम उत्तराध्ययन है। अथवा आचाराङ्ग सूत्र पढ लेनेके उत्तर अर्थात् पीछे इसका अध्ययन कराया जाता था, इसलिए यह उत्तराध्ययन कहलाया। दशवैकालिक तैयार होनेके बाद आचाराङ्गकी जगह उसे पढानेकी परम्परा चल पडी। वास्तवमे यह सूत्र साधुका आचार जाननेके बाद पढाया जाना चाहिए [१]।

श्वेताम्बर जैनोंमे इस सूत्रका वाचन सभवत. सभी सूत्रोंमे अधिक होता है क्योंकि इसमे सभी प्रकारकी सामग्री है। किसीको कथामय ज्ञानकी रुचि हो तो नमिराजर्षि, हरिकेशीमुनि, चित्त-संभूत, मृगापुत्र, अनाथीमुनि, रथनेमि—राजीमती आदि महापुरुषोंके तत्त्वज्ञान और वैराग्य भरे जीवन प्रसग हैं। यदि ऊंचे स्तरका तत्त्वज्ञान प्रिय हो तो, सत्ताईसवें अध्ययनसे आगेके मोक्षमार्ग, सम्यक्त्व-पराक्रम, लेश्या, कर्मप्रकृति आदि-आदि गम्भीरतत्त्वज्ञानके अध्ययन हैं। शेष अध्ययनोंमे विनय, परीषह, ब्रह्मचर्य, समिति-गुप्ति, साधुसमाचारी, प्रतिलेखनविधि आदि भिन्न-भिन्न विषयोंकी शिक्षायें हैं। इसके मूल श्लोक २००० हैं। कहा जाता है कि इस पर छोटी-बडी सब मिलाकर छप्पन टीकायें हैं।

(३) अनुयोगद्वार— इस शास्त्रमे अनुयोग अर्थात् सूत्र एवं अर्थके सम्बन्धको सुगमतासे समझनेके लिए चार द्वार-रास्ते बतलाए हैं [२]— (१) उपक्रम (२) निक्षेप (३) अनुगम (४) नय। इनका संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार है—

---

(१) उत्तराध्ययननिर्युक्ति गाथा ३ टीका

(२) अनुयोगद्वार सूत्र ६०

(१) उपक्रम— दूर रही हुई वस्तुको विभिन्न प्रतिपादनप्रकारोंसे समीप लाकर उसे निक्षेपके लायक बनाना उपक्रम कहलाता है।

(२) निक्षेप— प्रतिपाद्य वस्तुका स्वरूप समझानेके लिए नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव भेदसे उसे स्थापन करना निक्षेप है।

(३) अनुगम— सूत्रके अनुकूल अर्थ करना अथवा सूत्रकी व्याख्या करनेवाला वचन अनुगम कहा जाता है।

(४) नय— अनन्तधर्मवाली वस्तुके अनन्तधर्मोंमे से अन्य धर्मोंकी उपेक्षा करते हुए अपने इच्छित किसी एक धर्मका ग्रहण करना नय है।

निक्षेपके योग्य बनने पर ही वस्तुका निक्षेप किया जाता है। इसलिए वस्तुको निक्षेपके योग्य बनानेवाला उपक्रम पहले बतलाकर उसके बाद निक्षेप बतलाया है। नामादि भेदोसे व्यवस्थित की हुई वस्तुओंका ही व्याख्यान किया जाता है, इसलिए निक्षेपके बाद अनुगम दिया गया है। व्याख्या की हुई वस्तुका ही नयो द्वारा विचार किया जाता है अतएव अनुगमके बाद नयका विधान किया गया है।

उपर्युक्त उपक्रमादिके वर्णनके अन्तर्गत अनुयोगद्वारमे व्याकरण-सम्बन्धी लिङ्ग, विभक्ति, तद्धित, समास आदि; हाथ, दण्ड, धनुष्य आदिका माप, गुञ्जा, माशे आदिका तोल; तीन प्रकारके आगुल; समय, आवलिका आदि काल एवं प्रत्यक्ष आदि प्रमाण भी आ गए है। इसके मूल श्लोक २००५ हैं एव इसके संकलनकर्त्ता आर्यरक्षितसूरि कहे जाते है, जो साधिक नौ पूर्वके ज्ञाता थे।

नन्दी— नन्दी शब्दका अर्थ मङ्गल या हर्ष है। इसमें मङ्गलमय पाँच ज्ञानोंका वर्णन है अतः इसको नन्दी कहा जाता है। इसको देववाचक देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणने भगवती, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग आदि

अङ्गशास्त्रोमे दोहन, करके बनाया था ऐसी प्रसिद्धि है[१]।

इसके प्रारम्भमे स्थविरोके नाम है, फिर श्रोताओके दृष्टान्त है। आगे पाचो ज्ञानोका सुविस्तृत वर्णन है। द्वादशाङ्गकी हुण्डी अर्थात् किस अङ्गमे क्या होता है यह बतलाया है तथा कालिक-उत्कालिक सूत्रोके नाम है। इसका एक ही अध्ययन है एव ७०० श्लोक हैं।

चार छेदसूत्र

(१) निशीथ— निशीथ शब्दका अर्थ प्रच्छन्न अर्थात् छिपा हुआ है। इस शास्त्रमे सबको न बताने योग्य बातोका वर्णन है, इसलिए इसका नाम निशीथ है। यह सूत्र नववें प्रत्याख्यानपूर्वकी तृतीय वस्तुके बीसवें प्राभृतसे उद्धृत किया गया है। इसके बीस उद्देशक एव ८१५ श्लोक हैं। छद्मस्थ-मनुष्य होनेके कारण साधुओमे गल्ती हो जाना स्वाभाविक है। निशीथसूत्रमे वे-वे कार्य बतलाए गए है, जिन-जिन कार्योके कर लेनेसे साधुको मासिक एव चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। मासिक प्रायश्चित्त यदि उत्कृष्टरूपमे हो तो तीस दिनका तप करना पडता है या तीस दिनका छेद अर्थात् साधुपना कटता है। ऐसे ही चातुर्मासिक प्रायश्चित्तके उत्कृष्टरूपमे १२० दिनका तप या छेद आता है। तपसे भी छेदका काम कठिन है क्योंकि छोटे साधु भी जन्म भरके लिए बडे हो जाते हैं। जैसे—एक साधुने चातुर्मासिक छेदरूप प्रायश्चित्त लिया, तो उसकी दीक्षाके बाद चार महीनोमे जितने भी व्यक्ति दीक्षित हुए हैं, वे सब सदाके लिए उस छेद लेने वाले साधुसे दीक्षामे बडे

---

(१) जैनआगमोंको पुस्तकारूढ करनेवाले देवर्द्धिगणि ये नहीं हैं ऐसी भी मान्यता है।

(१) उपक्रम— दूर रही हुई वस्तुको विभिन्न प्रतिपादनप्रकारोंसे समीप लाकर उसे निक्षेपके लायक बनाना उपक्रम कहलाता है।

(२) निक्षेप— प्रतिपाद्य वस्तुका स्वरूप समझानेके लिए नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव भेदमे उसे स्थापन करना निक्षेप है।

(३) अनुगम— सूत्रके अनुकूल अर्थ करना अथवा सूत्रकी व्याख्या करनेवाला वचन अनुगम कहा जाता है।

(४) नय— अनन्तधर्मवाली वस्तुके अनन्तधर्मोंमे से अन्य धर्मोंकी उपेक्षा करते हुए अपने इच्छित किसी एक धर्मका ग्रहण करना नय है।

निक्षेपके योग्य बनने पर ही वस्तुका निक्षेप किया जाता है। इसलिए वस्तुको निक्षेपके योग्य बनानेवाला उपक्रम पहले बतलाकर उसके बाद निक्षेप बतलाया है। नामादि भेदोंसे व्यवस्थित की हुई वस्तुओका ही व्याख्यान किया जाता है, इसलिए निक्षेपके बाद अनुगम दिया गया है। व्याख्या की हुई वस्तुका ही नयो द्वारा विचार किया जाता है अतएव अनुगमके बाद नयका विधान किया गया है।

उपर्युक्त उपक्रमादिके वर्णनके अन्तर्गत अनुयोगद्वारमे व्याकरण-सम्बन्धी लिङ्ग, विभक्ति, तद्धित, समास आदि, हाथ, दण्ड, धनुष्य आदिका माप, गुञ्जा, माशे आदिका तोल, तीन प्रकारके आगुल, समय, आवलिका आदि काल एवं प्रत्यक्ष आदि प्रमाण भी आ गए हैं। इसके मूल श्लोक २००५ हैं एव इसके सकलनकर्त्ता आर्यरक्षितसूरि कहे जाते हैं, जो साधिक नौ पूर्वके ज्ञाता थे।

नन्दी— नन्दी शब्दका अर्थ मङ्गल या हर्ष है। इसमे मङ्गलमय पाँच ज्ञानोका वर्णन है अत. इसको नन्दी कहा जाता है। इसको देववाचक देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणने भगवती, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग आदि

अङ्गशास्त्रोसे दोहन, करके बनाया था ऐसी प्रसिद्धि है[1] ।

इसके प्रारम्भमे स्थविरोके नाम हैं, फिर श्रोताओके दृष्टान्त हैं । आगे पाचो ज्ञानोका सुविस्तृत वर्णन है । द्वादशाङ्गकी हुण्डी अर्थात् किस अङ्गमे क्या होता है यह बतलाया है तथा कालिक-उत्कालिक सूत्रोके नाम हैं । इसका एक ही अध्ययन है एव ७०० श्लोक हैं ।

चार छेदसूत्र

(१) निशीथ— निशीथ शब्दका अर्थ प्रच्छन्न अर्थात् छिपा हुआ है । इस शास्त्रमे सबको न बताने योग्य बातोका वर्णन है, इसलिए इसका नाम निशीथ है । यह सूत्र नववें प्रत्याख्यानपूर्वकी तृतीय वस्तुके बीसवें प्राभृतसे उद्धृत किया गया है । इसके बीस उद्देशक एव ८१५ श्लोक हैं । छद्मस्थ–मनुष्य होनेके कारण साधुओंसे गल्ती हो जाना स्वाभाविक है । निशीथसूत्रमे वे–वे कार्य बतलाए गए हैं, जिन–जिन कार्योंके कर लेनेसे साधुको मासिक एव चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है । मासिक प्रायश्चित्त यदि उत्कृष्टरूपमे हो तो तीस दिनका तप करना पडता है या तीस दिनका छेद अर्थात् साधुपना कटता है । ऐसे ही चातुर्मासिक प्रायश्चित्तके उत्कृष्टरूपमे १२० दिनका तप या छेद आता है । तपसे भी छेदका काम कठिन है क्योकि छोटे साधु भी जन्म भरके लिए बडे हो जाते हैं । जैसे–एक साधुने चातुर्मासिक छेदरूप प्रायश्चित्त लिया, तो उसकी दीक्षाके बाद चार महीनोमे जितने भी व्यक्ति दीक्षित हुए हैं, वे सब सदाके लिए उस छेद लेने वाले साधुसे दीक्षामे बडे

---

(१) जैनआगमोंको पुस्तकारूढ करनेवाले देवर्द्धिगणि ये नहीं हैं ऐसी भी मान्यता है ।

हो जाएंगे कारण, उसका चार महीनोका साधुपना काट लिया गया, अस्तु ।

(२) व्यवहार— जिसे जो प्रायश्चित्त आता है, उसे वही प्रायश्चित्त देनेका नाम व्यवहार है। इस सूत्रमे प्रायश्चित्त देनेकी विधियोका वर्णन होनेसे इसे व्यवहार कहते हैं। इसके दस उद्देशक है। उनमे निष्कपट—सकपट आलोचनाका प्रायश्चित्त, एकलविहारी साधु शिथिल होकर पुन.गणमे आये व गृहस्थ होकर पुनः साधु बने, उसे लेनेकी विधि, दोषी साधुओकी शुद्धि, अनवस्थितादिका पुनः सयमारोपण, सच्चपइन्ना व्यवहार, आचार्य-उपाध्याय आदिकी पदवी कब देना ? मृषावादीको पद न देना, आचार्य आदिको कितने साधुओके साथ विचरना ? स्थविरकी आज्ञा बिना विचरनेका निषेध, साधु-साध्वीके बारह सभोग, प्रायश्चित्त देने घाले आचार्य आदि कैसे हो ? आचार्य-उपाध्यायके अतिशय, सभोगीको विसंभोगी करनेकी विधि, शय्यातरसम्बन्धि-विवेक, चौमासेके लिये शय्या, पाट आदि उपकरण याचनेकी विधि, पाच व्यवहार, दीक्षा लेनेके बाद कौनसा सूत्र कव पढाना एवं प्रायश्चित्तका स्पष्टीकरण आदि-आदि विपयोका वर्णन है। इसके मूल ६०० श्लोक हैं।

(३) वृहत्कल्प— कल्पका अर्थ मर्यादा है। साधुधर्मकी विशिष्ट-मर्यादाओका वर्णन करनेवाला होनेसे इस सूत्रका नाम वृहत्कल्प है। इसके छः उद्देशक हैं। उनमें साधु साध्वियोको अचित्तफल लेनेकी विधि, एक ग्राम-नगरमे रहनेकी विधि, शेषकालमे ठहरनेका समय, चौमासेमे विहारका निषेध, आर्यक्षेत्रकी सीमा, उपाश्रयकी योग्यता, शैय्यातरपिण्ड, पाच तरहके वस्त्र-रजोहरण, साध्वीके स्थानमे बैठनेसोने-आदिकी विधि, गृहस्थके घरमे व्याख्यान, नववें-दसवे प्रायश्चित्तके अधिकारी, दीक्षा व पढानेके अयोग्य व्यक्ति, ज्ञानके लिए अन्य गणमें गमन, क्लेश होने पर क्षमा मागे विना गोचरी-पचमी जानेका निषेध, परिहारविशुद्धिचारित्रकी

विधि, साध्वियोकी विशेषविधिया, विकट परिस्थितिमे साधु साध्वीका काटा आदि निकाले इत्यादि वर्णन है । इसके मूल ४७३ श्लोक हैं ।

(४) दशाश्रुतस्कन्ध— इसका दूसरा नाम आचारदशा भी है । इसमे दस दशायें-अध्ययन हैं । उनमे क्रमश बीस असमाधिदोष, इक्कीस सबलदोष, तेतीस अशातनाएं, आचार्यकी आठ संपदायें, चित्तसमाधिके दस स्थान, श्रावकोकी ग्यारह प्रतिमायें, साधुओकी बारह प्रतिमायें, भगवान् महावीरके पचकल्याणक, तीस महामोहनीयकर्म-बन्धके स्थान और नव प्रकारके निदान (नियाणे) वर्णित है । इसके मूल श्लोक १८३५ है ।

दशवैकालिक-भूमिकाके अनुसार निशीथ आदि चारो छेदसूत्र श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीने अङ्गशास्त्रोंसे उद्धृत करके तैयार किए है, ऐसे माना जाता है[१] । इनमे मुख्यतया जान-अनजानमे किए गए पापोको छेदनेके विधि-विधान हैं तथा असमाधिदोष, सबलदोष आदि-आदि अधिकतर उन्ही कार्योका वर्णन है, जिनसे छेद-प्रायश्चित्त आता है अस्तु ! इसीलिए इन सूत्रोको छेदसूत्र कहा जाता है ऐसी सभावना है ।

(१) आवश्यक— सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी आराधनाके लिए अवश्य करने योग्य क्रियाको आवश्यक कहते हैं । इस सूत्रमे उन्ही आवश्यक क्रियाओका वर्णन है, इसलिए इसका नाम आवश्यकसूत्र है । इसके— (१) सामायिक (२) चतुर्विंशतिस्तव (३) वन्दना (४) प्रतिक्रमण (५) कायोत्सर्ग (६) प्रत्याख्यान ये छ भेद हैं एवं १२५ श्लोक । पहला आवश्यक सामायिकचारित्ररूप

---

(१) दशाश्रुतस्कन्धके निरुक्तिकार इन्हें निशीथके अतिरिक्त तीन सूत्रोंके निर्यूहक मानते हैं ।

है। इससे आत्मा शान्तभावको प्राप्त होती है। आत्मा शान्त होने पर भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिए, अतः दूसरा आवश्यक चतुर्विंशतिस्तव-रूप है। इसमें चौबीस तीर्थङ्करोंका गुणकीर्तन है, जो ज्ञानदर्शनरूप है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्रकी आराधनामें स्खलना होने पर गुरुके समक्ष वन्दना करके विनयपूर्वक आलोचना करनी चाहिए, अतः तीसरा आवश्यक वन्दना है।

वन्दनाके बाद भूलसे किए गए सब पापोंको याद करके उनके लिए मिच्छामिदुक्कडं बोलना यानि पश्चात्ताप करना चाहिए, इसलिए चौथा आवश्यक प्रतिक्रमणरूप है। प्रतिक्रमण यानी पापोंसे पीछे हटना।

कृतपापोंका प्रतिक्रमण करके धर्म-शुक्लध्यानकी प्राप्तिके लिए कायोत्सर्ग करना चाहिए अतः पांचवां आवश्यक कायोत्सर्गरूप है। कायोत्सर्गमें कायाकी ममताको त्यागकर आत्माका एवं भगवान्‌का चिन्तन किया जाता है।

आत्मचिन्तनके बाद भविष्यके लिए द्रव्यसे अन्न, पानी, वस्त्रादि तथा भावसे अज्ञान, प्रमाद, कषाय आदिका प्रत्याख्यान-त्याग करना चाहिए, इसलिए छट्ठा आवश्यक प्रत्याख्यानरूप है। इसमें यथाशक्ति प्रत्याख्यान किया जाता है[1]।

प्रश्न १६— वर्तमान बत्तीस सूत्रोंकी श्लोकसंख्या कितनी है?

उत्तर— प्राप्त ग्रन्थोंके अनुसार लगभग ६७८५२ श्लोक हैं— ग्यारह अङ्गोंके ३५७१६, बारह उपाङ्गोंके २५८८३ चार मूलसूत्रोंके २४०५ चार छेदसूत्रोंके ३७२३ और आवश्यकके १२५ श्लोक हैं।

---

(१) हरिभद्रीय आवश्यकके आधार पर

प्रश्न १७— आचाराङ्ग आदि अङ्गशास्त्र एकही प्रकारके होते हैं या भिन्न-भिन्न प्रकारके ?

उत्तर— जिन तीर्थंकरोके जितने गणधर होते हैं उतने ही प्रकारके अङ्ग-शास्त्र होते हैं अर्थात् सभी गणधर पृथक्-पृथक् अङ्ग-शास्त्रोकी रचना करते हैं। नाम व विषय समान होते हैं, किन्तु रचनाशैली अपनी-अपनी भिन्न होती है।

प्रश्न १८— भगवान् महावीरके गणधर तो ग्यारह थे, फिर गण एवं वाचनाएँ–अङ्गशास्त्रोंकी रचनायें नव ही क्यों हुईं ?

उत्तर— आठवें-नौवें गणधरोकी वाचना एक समान थी और दसवें- ग्यारहवें गणधरोकी वाचना एक समान थी। इसी तरह इनके गण भी शामिल थे, इसलिए नवगण एव नव वाचनाएँ मानी गईं। अभी जो आचाराङ्गदि अङ्गशास्त्र विद्यमान हैं वे सुधर्मस्वामी-की वाचना–रचना कही जाती है।

प्रश्न १९— बत्तीस सूत्रोमें कालिक कितने हैं और उत्कालिक कितने हैं ?

उत्तर— आचाराङ्गादि ग्यारह अङ्ग, जम्बूदीपप्रज्ञप्ति, चन्द्र-प्रज्ञप्ति, पाचनिरयावलिका, उत्तराध्ययन, और चारो छेद ये २३ सूत्र तो कालिक हैं, और (१) औपपातिक (२) राजप्रश्नीय (३) जीवभिगम (४) प्रज्ञापना (५) सूर्यप्रज्ञप्ति (६) दशवैकालिक (७) नन्दी एवं (८) अनुयोगद्वार ये आठ सूत्र उत्कालिक हैं[1]। कालिकसूत्र दिन–रातके प्रथम और अन्तिम प्रहरमे पढे जाते है और उत्कालिकसूत्र ३४ अस्वाध्यायोको छोडकर चाहे जब पढे जा सकते हैं। आवश्यक कालिक-उत्कालिक दोनोसे भिन्न है। इसका समय सुबह एक मुहूर्त रात्रि अवशिष्ट रहे तबसे सूर्योदय तक है तथा शामको सूर्य छिपनेसे लेकर

(१) नन्दी सूत्र–४२ मूल तथा टीका

एक मुहूर्त रात जाय वहा तक है[1] ।

प्रश्न २०— सूत्र पढानेके विषयमें क्या कुछ समय निश्चित है।

उत्तर— सब सूत्रोके विषयमें तो समयका नियम नही है, लेकिन कई विशेष-सूत्रोके लिए समय निश्चित है। जैसे—दीक्षा लेनेके तीन वर्ष बाद साधुको आचाराङ्ग-निशीथ पढ़ाए जा सकते हैं। चार वर्ष बाद सूत्रकृताङ्ग, पाच वर्ष बाद दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहार। आठ वर्ष बाद स्थानाङ्ग-समवायाङ्ग और दस वर्ष बाद भगवती यावत् उन्नीस वर्ष बाद दृष्टिवाद-बारहवाअङ्ग पढाया जा सकता है[2]। इसमे शर्त यह है कि पहले सूत्र पढ लेनेके बाद अगले सूत्र पढाए जाएँगे[3]। जैसे—दीक्षा लेनेके चार वर्ष बाद सूत्रकृताङ्ग पढानेका विधान है, किन्तु उससे पहले आचाराङ्ग-नीशीथ अवश्य पढे होने चाहिए। यहा एक बात यह ध्यान देनेकी है कि जब साधुओके लिए भी सूत्र पढानेकी बाबत वर्षोंका नियम है तो फिर गृहस्थ अपनी इच्छानुसार सूत्र कैसे पढ सकते है।

प्रश्न २१— सूत्र हर एक साधुको पढाया जा सकता है या नहीं ?

उत्तर— चार व्यक्ति पढानेके अयोग्य माने गये हैं[4]— अविनीत (१) दूध, दही, घी, आदि विगयके लोलुप, (२) क्रोधी (३) कपटी (४) इनके विपरीत विनीत (१) विगयके अलोलुप (२) शान्त (३) सरल (४) – ये चार व्यक्ति पढानेके योग्य माने गए है। तथा अन्यतीर्थिक और गृहस्थोको सूत्र पढानेका निषेध है एवं पढानेवाले

---

(१) उत्तराध्ययन अ–२६ की जयाचार्य कृत जोड़के आधारसे

(२) व्यवहार उ १०

(३) निशीथ. उ १९ बोल ६ के आधार से

(४) स्था. ४ उ. ३–सू ३२६

साधुको चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है [1] ।

प्रश्न २२— सूत्र कैसे पढ़ाना चाहिए ?

उत्तर— सबसे पहले सूत्रका मूल-अर्थ समझाना चाहिए । दूसरी वारमे उसकी नियुक्ति करनी चाहिए यानी सूत्रमें विद्यमान निश्चित अर्थोको युक्ति द्वारा कुछ विस्तृत करके बतलाना चाहिए । फिर तीसरी बारमें उस सूत्रसे सम्वन्ध रखनेवाले सभी प्रसङ्ग-अनुप्रसङ्ग बताने चाहिए अर्थात् जितना भी विवेचन किया जा सके करना चाहिए [2] । जो विद्यार्थी पाठके प्रारम्भमे ही तर्क-वितर्क करनेकी कोशिश करते हैं उन्हे इस प्रश्नको कुछ गौर से पढाना चाहिए ।

प्रश्न २३— सूत्र किसलिए पढ़ाना चाहिए ?

उत्तर— सूत्र पढानेके निम्नलिखित पाँच कारण कहे हैं [3]—

(१) शिष्योको श्रुतज्ञानका सग्रह होगा ऐसे सोचकर सूत्र पढाना ।
(२) सूत्रोका ज्ञान होनेसे शिष्य आहार, पानी, वस्त्र, पात्र आदिकी शुद्ध गवेषणा करेंगे ऐसे सोचकर सूत्र पढाना ।
(३) सूत्र पढानेसे मेरे कर्मनिर्जरा होगी ऐसे सोचकर सूत्र पढाना ।
(४) पढानेसे मेरा सूत्रज्ञान विशेषस्पष्ट हो जायगा ऐसे सोचकर सूत्र पढाना ।
(५) सूत्रोका व्यवच्छेद न हो अर्थात् ज्ञानकी परम्परा सदा चलती रहे ऐसे सोचकर सूत्र पढाना ।

प्रश्न २४— सूत्र कैसे पढ़ना चाहिए ?

उत्तर— प्रारम्भमे आचार्य-उपाध्यायके पास वाचना लेकर पढना चाहिए । अपने आप पढनेवाले साधुको चातुर्मासिक प्रायश्चित्त

---

(१) निशीथ—उ.१६—बोल—१७
(२) नन्दी सूत्र ५७ गाथा ६७
(३) स्था- ५ उ. ३ सूत्र ४६८

आता है[1]। उक्त नियमके अनुसार शिष्य गुरुसे पूछता है— महाराज ! कौनसा सूत्र पढ़ूँ ? तब आचाराङ्ग अथवा सूत्रकृताङ्ग पढ। ऐसी गुरुकी सामान्य आज्ञा होती है, उसे उद्देश कहते हैं तथा आचाराङ्ग-प्रथमश्रुतस्कन्धका प्रथम या द्वितीय अध्ययन पढ ! इस प्रकारकी विशेष आज्ञाको समुद्देश कहते हैं।

पुराणे जमानेमे गुरु अपने शिष्योको कण्ठाग्र ही शास्त्रोकी वाचना देते थे अतः अध्ययन आदिके विभागानुसार उन्होने किस शास्त्र-को कितने दिनोमे पढाना यह निश्चित कर रखा था। उस निश्चित समयको उद्देशनकाल एवं समुद्देशनकाल कहा जाता था। जैसे-आचाराङ्ग सूत्रके ५० उद्देशन— समुद्देशन काल हैं अर्थात् आचाराङ्ग ५० दिनोमे पढाया जाता था।

सूत्र पढते समय श्रुतज्ञानकी आराधनाके लिए जो तप किया जाता है उसे उपधानतप कहते हैं। यह तप मागलिक माना जाता है एव उपधानतपपूर्वक पढा हुआ ज्ञान विशेष लाभदायक होता है। कई सूत्रोके उपधानतपमे आयविल एव निर्विकृति (नीविया) दोनो करनेका विधान है, कइयोके उपधानतपमे केवल आयबिल और कइयोके उपधानतपमे केवल नीवियोका कथन है। व्यवहार, वृहत्कल्प तथा दशाश्रुतस्कन्ध–इन तीनोंके उद्देशन–समुद्देशन काल तो प्राप्त होते हैं, किन्तु क्या तप करना – यह खुलासा नही मिलता।

प्रश्न २५— सूत्रोके उद्देशन–समुद्देशनकाल तथा उपधानतप-का विवेचन कीजिए यानी समझाइये कि किस-किस सूत्रके कितने-कितने उद्देशन–समुद्देशनकाल हैं एवं कितने–कितने आयंबिल–नीविया हैं ?

उत्तर— उपर्युक्त प्रश्नका समाधान निम्नलिखित कोष्ठकोंमे कीजिए—

(१) नीशीथ उ–१६ बोल–१६

सूत्रों के नाम	उद्देशन–समुद्देशन–काल	आयंबिल	नीवी	सर्व तप दिन
१. आचाराङ्ग–प्रथमश्रुतस्कन्ध	२४	१३	११	५०
आचाराङ्ग–द्वितीयश्रुतस्कन्ध	२६	१५	११	
२. सूत्रकृताङ्ग प्र० श्रु०	२०	११	९	३०
सूत्रकृताङ्ग—द्वि० श्रु०	१०	७	३	
३ स्थानाङ्ग	१८	११	७	१८
४. समवायाङ्ग	३	३	+	३
५ भगवती	७७	३५	१५१	१८६
६ ज्ञाता प्र श्रु.	२०	११	९	३३
ज्ञाता द्वि. श्रु	१३	८	५	
७ उपाशकदशा	१४	९	५	१४
८ अन्तकृद्दशा	१२	८	४	१२
९ अनुत्तरोपपातिकदशा	७	६	१	७
१० प्रश्नव्याकरण	१४	९	५	१४
११ विपाक प्र श्रु	११	६	५	२४
विपाक द्वि श्रु	१३	८	५	
१२ औपपातिक	३	३	+	३
१३ राजप्रश्नीय	३	३	+	३
१४ जीवाभिगम	३	३	+	३
१५ प्रज्ञापना	३	३	+	३
१६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	३	३	+	३
१७. चन्द्रप्रज्ञप्ति	३	३	+	३
१८ सूर्यप्रज्ञप्ति	३	३	+	३

सूत्रो के नाम	उद्दे शन-समुद्दे शन-काल	आयबिल	नीवी	सर्व तप दिन
१६. पाचनिरयावलिका	७	५	२	७
२४. दशवैकालिक	१५	६	६	१५
२५. उत्तराध्ययन	२८	१७	११	२८
२६. अनुयोगद्वार	१	+	१	१
२७. नन्दी	१	+	१	१
२८. निशीथ	१२	७	५	१२
२६. व्यवहार	५			
३०. वृहत्कल्प	३			
३१. दशाश्रुतस्कन्ध	१२			
३२ आवश्यक	८	५	३	८

नन्दी— अनुयोगद्वारको छोडकर सभी सूत्रोका प्रारम्भ आयं-बिलसे होता है। फिर प्रायः एक दिन आयंबिल और एक दिन नीवी—ऐसे क्रम चलता है। अन्तमे दो, तीन या चार दिन निरतर आयबिल करने होते हैं।

भगवती सूत्रकी विशेषविधि यह है— प्रारम्भके पन्द्रह दिनोमे (तीसरे शतकके चमरोद्दे शक तक) ग्यारह आयंबिल और बीचमे चार नीविया की जाती हैं। सोलहवें दिनसे ४७वें दिन तक (३२ दिनों में) एक दिन आयबिल पाच दिन नीविया, एक दिन आयंबिल छः दिन निविया, फिर एक दिन आयबिल पाच दिन नीविया—इस क्रमसे उपधान-तप चलता है। ४८वे ४६वें दिन दो आयबिल करके गोशालकका पन्द्रहवा शतक पढा जाता है। उसके बाद १५१ दिनो तक (५० से

१८६ तक) सात दिन नीविया एक दिन आयबिल, फिर सात नीविया एक आयबिल— इस क्रमसे उपधानतप किया जाता है। कई स्थविरो-का यह भी मत है कि अष्टमी और चतुर्दशीके दिन आयबिल एव शेष दिनोंमे नीवियाँ की जानी चाहिए, अस्तु ।

उत्तराध्ययन सूत्रमे जोगवंउवहाणव यह पाठ कई जगह आया है [1]। इसका अर्थ यह है कि मुनि शुभयोगमय–समाधियुक्त एव उप-धानतपयुक्त होते हैं। इस कथनके अनुसार साधुओको उपधानतप करनेका प्रयत्न अवश्य करना ही चाहिए। विधियुक्त उपधान करनेका नाम योगवहन भी है। स्था. स्था ३ उ १ सू १३८ मे योगवहन करनेसे अनादि–अनन्त ससाररूप जगलसे पार होना कहा है तथा स्था. स्था १० सू ७५८ मे योगवहनसे भविष्यत्के लिए कल्याणकारीकर्मोका उपार्जन होना बतलाया है, अस्तु ।

यद्यपि भगवतीसूत्रको छोडकर शेष अङ्गसूत्रोके उद्देशन–समुद्देशनकाल नन्दी सूत्र ४६ से ५६ तक वर्णित हैं तथापि शेषसूत्रोके उद्देशन-समुद्देशनकाल एव उपधानमे किससूत्रके कितने आयबिल-नीविया करना यह वर्णन मूलआगमोमे प्राय दृष्टिगोचर नही होता अत. यहा वर्धमानसूरिकृत–आचारदिनकर प्रथमविभाग उदय २१ के आधारमे किया गया है। योगवहनके समय आहार एवं कायोत्सर्ग आदि करनेकी विशेपविधि जिज्ञासु सज्जनोको उक्त ग्रन्थसे जानने योग्य है।

प्रश्न २६— सूत्र किसलिए पढ़ना चाहिए ?

उत्तर— पाच बातोको लक्ष्य करके सूत्र पढना चाहिए— वे ये है[2]— (१) तत्त्वोका ज्ञान करनेके लिए (२) तत्त्वो पर श्रद्धा करनेके लिए (३) शुद्धचारित्र पालनेके लिए (४) मिथ्याभिनिवेश–झूठा आग्रह छोडने

---

(१) उ अ ११ गा १४। उ. अ २४ गा. २७-२६

(२) स्था ५ उ. ३ सू ४६८

एवं छुडवानेके लिए (५) यथार्थभावोको-द्रव्य-पर्यायोको समझनेकी भावनासे। तत्त्व यह है कि मात्र आत्मकल्याणकी भावनासे सूत्र पढना चाहिए। यशोकीर्तिकी भूखसे कदापि नही।

प्रश्न २७— सूत्रादि-ज्ञान किस समय पढ़ना एव पढाना चाहिए?

उत्तर— (१) मृगशिरा (२) आर्द्रा (३) पुष्य (४) पूर्वाफाल्गुनी (५) पूर्वाभाद्रपदा (६) पूर्वापाढा (७) मूल (८) अश्लेपा (६) हस्त (१०) चित्रा— ये दस नक्षत्र ज्ञानकी वृद्धि करनेवाले माने गये हैं अर्थात् इन नक्षत्रोके समय ज्ञान पढा एवं पढाया जाय तो अच्छी सफलता मिलनेकी सम्भावना है [१]। स्था. स्था. २ उ १ मे यो भी कहा है कि साधु-साध्वियोंको पूर्व और उत्तर— इन दो दिशाओमे मुख करके ज्ञान पढाना चाहिए।

प्रश्न २८— सूत्र पढ़ते समय खास ध्यान देनेकी और कौन-कौनसी बातें हैं?

उत्तर— श्रुतज्ञानके चौदह अतिचार-दोष माने गए हैं अत. पढते समय उनका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। चौदह अतिचार निम्नलिखित हैं [२]।

(१) व्याविद्ध— सूत्रके अक्षरोको उलट-पुलट करके कुछका कुछ बोलने लग जाना जैसे-णमो अरिहंताणं की जगह नमूहरीहंतानंग कहना।

(२) व्यत्याम्रेडित— एक पदके अक्षर दूसरे पदसे जोड देना जैसे-णमो उवज्झायाण के स्थानपर णमोउ वज्झायाणं कर देना।

(३) हीनाक्षरिक— सूत्रके पदमेसे अक्षर ही उडा देना। जैसे—

(१) स्थानाङ्ग-१०-सू-७८१

(२) हरिभद्रीय आवश्यक अ. ४ के आधारसे—

णमो आयरियाण की जगह णमो आरियाणं कहने लग जाना।

(४) अत्यक्षरिक— सूत्रके पदमे नया अक्षर जोड़ देना। जैसे— उवज्झायाणं की जगह उवज्झारियाण बोलना।

(५) पदहीन— समूचा पद ही उडादेना। जैसे–णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण, णमो लोए सव्वसाहूणं। यहा णमो उवज्झायाण छोड दिया गया है।

(६) विनयहीन— ज्ञानके प्रति या ज्ञानी देव–गुरुके प्रति श्रद्धा, भक्ति एव नम्रता न रखना।

(७) घोषहीन— घोषका अर्थ उच्चारण है। वह पाँच प्रकार का होता है— (१) उदात्त (२) अनुदात्त (३) स्वरित (४) सानुनासिक (५) निरनुनासिक। इनका अर्थ इस प्रकार है— (१) उदात्त– ऊँचेस्वरसे उच्चारण करना (२) अनुदात्त– नीचेस्वरसे उच्चारण करना (३) स्वरित– मध्यमस्वरसे उच्चारण करना (४) सानुनासिक– नासिका और मुख दोनोसे उच्चारण करना (५) निरनुनासिक– केवल मुखसे ही उच्चारण करना। सूत्रका जो पाठ जिस घोष– उच्चारणसे बोलना हो उसमे गडबडी करना घोषहीन दोष है।

(८) योगहीन— योग नाम सन्धिका है[1] सूत्र पाठमे अनावश्यक सन्धि कर देना एव आवश्यक सन्धिको तोड देना। जैसे— लोगस्स उज्जोयगरे की जगह लोगस्सुजोयगरे कहना और चउवीसपिकेवली की जगह चउवीसअपिकेवली कर देना।

(६) सुष्ठुदत्त— शिष्यमे जितनी ज्ञान लेनेकी शक्ति हो उससे अधिक पढाना सुष्ठुदत्त दोष है। यहा सुष्ठुका अर्थ शक्ति व योग्यतासे अधिक है और दत्तका अर्थ देना–पढाना है।

(१०) दुष्ठुप्रतीच्छित— सूत्रज्ञानको दुर्भावसे ग्रहण करना–

---

(१) कई योगहीनका अर्थ शुभयोगरहित पढ़ना भी करते हैं।

पढना दुष्ठुप्रतीच्छित दोष है।

(११) अकालेकृतः स्वाध्याय— जिस सूत्रको पढनेका जो समय न हो, उस समय उसे पढना दोष है। जैसे-कालिकसूत्रोको प्रथम-अन्तिम प्रहरके अतिरिक्त पढनेकी मनाही है, उन्हे उस समय पढना।

(१२) काले न कृत. स्वाध्याय— जिस सूत्रका जो समय निश्चित हो उस समय उसे न पढना दोष है। जैसे- आवश्यक सूत्रका समय सुवह-शाम दोनो वक्त निश्चित है, उस समय उसे नही करना।

(१३) अस्वाध्याये स्वाध्यायित— ऐसा कारण या समय उपस्थित होना जिसमे सूत्रोका स्वाध्याय करना-पढ़ना वर्जित हो, उसे अस्वाध्याय (असज्झाई) कहते हैं। उसमे स्वाध्याय करना दोष है।

(१४) स्वाध्याये न स्वाध्यायित— स्वाध्यायके समय स्वाध्याय न करना भी दोष है। स्वाध्याय करनेके चार समय कहे हैं[1]— (१) पूर्वाह्ण- दिनका प्रथम प्रहर (२) अपराह्ण- दिनका चौथा प्रहर (३) प्रदोष- रात्रिका प्रथम प्रहर (४) प्रत्यूष-रात्रिका चौथा प्रहर। इन चारो समयोमे स्वाध्याय न करनेसे दोष लगता है[2]। इसीलिए सुबह प्रतिलेखनके बाद, शामको प्रतिलेखनसे पहले। शामको प्रतिक्रमणके बाद और सुबह प्रतिक्रमणमे पहले कम से कम पाँच गाथाओकी स्वाध्याय अवश्यकी जाती है।

उपर्युक्त चौदह अतिचारोका सेवन करनेसे श्रुतज्ञानकी अशातना-विराधना होती है एव अतिचारयुक्त पढा हुआ ज्ञान सफल भी नही होता।

प्रश्न २६— श्रुतज्ञानकी आराधना करनेके लिए और क्या-क्या करना चाहिए ?

उत्तर— नए ज्ञानकी प्राप्तिके लिए और प्राप्त ज्ञानकी रक्षाके

(१) स्था- ४- उ-२-सू-२८५

(२) आवश्यक अ-४ तीसरा श्रमणसूत्र

लिए निम्नलिखित आठ आचरण कहे हैं,[1] जो ज्ञानाचारके नामसे प्रसिद्ध हैं— (१) काल (२) विनय (३) बहुमान (४) उपधान (५) अनिह्नव (६) व्यञ्जन (७) अर्थ (८) तदुभय। इनका अर्थ इस प्रकार है—

(१) कालाचार— शास्त्रमे जिस समय जो सूत्र पढनेकी आज्ञा है, उस सूत्रको उसी समय पढना कालाचार है।

(२) विनयाचार— ज्ञानदाता गुरुका विनय करना विनयाचार है।

(३) बहुमानाचार— ज्ञान और ज्ञानदाता गुरुके प्रति हृदयमे भक्ति व श्रद्धाके भाव रखना बहुमानाचार है।

(४) उपधानाचार— जिस सूत्रको पढनेके लिए जो तप बताया गया है[2]। उस सूत्रको पढते समय वही तप करना उपधानाचार है।

(५) अनिह्नवाचार— ज्ञानदाता गुरुके नामको न छिपाना एवं समय-समय पर उनके गुणग्राम करना अनिह्नवाचार है।

(६) व्यञ्जनाचार— सूत्रपाठके अक्षरोका शुद्ध उच्चारण करना व्यञ्जनाचार है। यहा व्यञ्जनका अर्थ उच्चारण है।

(७) अर्थाचार— सूत्रोके पाठोका नि स्वार्थ बुद्धिसे सच्चा अर्थ करना अर्थाचार है।

(८) तदुभयाचार— सूत्र और अर्थ दोनोको शुद्ध पढना एवं समझना तदुभयाचार है। उपर्युक्त आठ आचारोयुक्त पढनेसे श्रुतज्ञानकी आराधना होती है। एव उसकी आराधनासे अज्ञानका नाश होता है[3]।

काले विणये बहुमाणे, उवहाणे तहय निन्हवणे।
वजण अत्थ तदुभये, अठविहो नाण मायारो॥

(१) धर्मसग्रह-देशनाधिकार अधिकार ३ श्लोक ५४ पृष्ट १४० तथा स्था स्था. २ उ ३ सूत्र ८४ टीका

(२) तपका वर्णन प्रश्न २५ में आ गया है।

(३) उत्तरा. अ. २६ बोल-२४

पढ़नेवालोको इन बातो पर पूरा-पूरा ध्यान देना परम आवश्यक है।

प्रश्न ३०— अस्वाध्यायमें सूत्र पढ़नेका जो निषेध किया गया है वे अस्वाध्यायें कितनी हैं ?

उत्तर— अस्वाध्याय चौंतीस मानी जाती हैं- दस आकाश-सम्बन्धी, दस औदारिक-सम्बन्धी, चार महाप्रतिपदाये और चार उनके पूर्ववर्ती-पूर्णिमाओंके महोत्सव तथा चार संध्यायें-ऐसे ३२ अस्वाध्यायोका वर्णन स्थानाङ्ग सूत्रमे है[1]। और भाद्रपूर्णिमा एव आश्विन-प्रतिपदा इन दो अस्वाध्यायोका उल्लेख निशीथ उ १६ मे है। चौंतीस अस्वाध्यायोका विवेचन नीचे पढ़िये—

(१) उल्कापात— आकाशसे रेखावाले तेजःपुन्जका गिरना अथवा पीछेसे रेखा एव प्रकाशवाले तारेका टूटना उल्कापात कहलाता है। उल्कापातके बाद एक प्रहर तक अस्वाध्याय (सूत्र पढ़नेकी मनाही) रहती है।

(२) दिग्दाह— दिशाविशेषमे मानो बडा शहर जल रहा हो इस प्रकार ऊपरकी ओर प्रकाश दिखाई देना एव नीचेकी ओर अन्धकार मालूम होना दिग्दाह है तथा सूर्य अस्त होनेके बाद जो दिशा लाल होती है उसे भी दिग्दाह कहते हैं। जब तक दिग्दाह-लालिमा न मिटे तब तक सूत्र पढना निषिद्ध है।

(३) गर्जित— वर्षाऋतुके अतिरिक्त[2] मेघकी गर्जना हो तो दो प्रहर तक अस्वाध्याय रहती है।

---

(१) स्था ४ सू- २८५ तथा स्था- १० सू- ७१४

(२) आर्द्रासे स्वाति नक्षत्र तक अर्थात् आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा एव स्वाति-ये नक्षत्र जब सूर्यसे युक्त होते हैं, तब वर्षाऋतु मानी जाती है। वर्षाऋतुमे गाज-बीज स्वाभाविक होनेके कारण इनकी अस्वाध्याय नहीं होती। वास्तवमें देव-कृत गाज-बीजकी ही अस्वाध्याय मानी गई हो ऐसा संभव है।

(४) विद्युत्— वर्षाऋतुके अतिरिक्त बिजली चमकने पर एक प्रहर तक अस्वाध्याय रहती है।

(५) निर्घात— बादल अथवा बिना बादलवाले आकाशमे प्रचण्डध्वनि अर्थात् कडकडाहट हो उसे निर्घात कहते हैं। निर्घातकी एक दिन-रात तक अस्वाध्याय रहती है। वास्तवमे यह अस्वाध्याय व्यन्तरदेवकृत कडकडाहटकी अपेक्षासे है, किन्तु निश्चय न होनेके कारण हरएक कडकडाहटकी या विद्युत्पातकी अस्वाध्याय रखी जाती है।

(६) यूपक— शुक्लपक्षकी एकम, दूज और तीजको जो सध्याकी प्रभा और चन्द्रमाकी प्रभा मिल जाती है, उसे यूपक कहते हैं। चन्द्रमाकी प्रभासे आवृत होनेके कारण सन्ध्याका बीतना मालूम नही होता इसलिए -इन तीन दिनोंमे रात्रिके प्रथम प्रहरमे चन्द्रमा विद्यमान रहे वहा तक अस्वाध्याय मानी गई है।

(७) यक्षादीप्त— आकाशकी किसी एक दिशामे मनुष्य, पशु, पिशाचादिकके चिन्ह दीखते हैं या बीच-बीचमे ठहरकर बिजलीके समान जो प्रकाश दिखाई देता है उसे यक्षादीप्त कहते हैं। इसकी एक प्रहर तक अस्वाध्याय रहती है।

(८) धूमिका— कार्तिकसे लेकर माघमास तकका समय गर्भमास कहलाता है। इस कालमे जो धूम्रवर्णकी धू वर पडती है वह धूमिका है। धूमिका गिरती रहे तब तक अस्वाध्याय रहती है।

(९) मिहिका— श्वेतवर्णकी धूंवरको मिहिका कहते है। इसकी भी ऊपरवत् अस्वाध्याय रहती है।

(१०) रजउद्घात— वायुसे प्रेरित होकर आकाशमे जो चारो ओर धूल छा जाती है उसे रजउद्घात कहते है। यह भी जब तक रहे तब तक अस्वाध्याय रहती है। ये दसो आकाश सम्बन्धी अस्वाध्यायें हैं।

अब औदारिकशरीर-सम्बन्धी दस अस्वाध्याय कहते हैं।

(११) अस्थि
(१२) मास
(१३) शोणित

हड्डी, मास और लोही तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रियके हो तो साठ हाथ तक एवं मनुष्यके हो तो सौ हाथ तक अस्वाध्याय मानी जाती है।

यह मरे हुए तिर्यञ्च-मनुष्यके विक्षत शरीरकी अपेक्षासे समझनी चाहिए। साधारण-क्षत आदिके अस्थि, मास और लोही हो तो जहा तक दृष्टिगोचर हो वही तक उनकी अस्वाध्याय गिनी जाती है[1]।

(१४) अशुचि— मल-मूत्रादि अशुचिपदार्थ दृष्टिगोचर होते हो तो उनकी अस्वाध्याय रहती है। (टीकाकारने मल मूत्रादिकी दुर्गन्धि आने पर भी अस्वाध्याय मानी है।)

(१५) श्मशान— श्मशानके चारो तरफ़ सौ-सौ हाथ तक अस्वाध्याय रहती है।

(१६) चन्द्रग्रहण— चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ प्रहर और उत्कृष्ट बारह प्रहर तक अस्वाध्याय होती है। यदि उगनेके साथ ही चन्द्र ग्रसित हो जाय तो आठ प्रहर तथा रातभर ग्रसित रहे या ग्रहण सहित अस्त हो जाय तो बारह प्रहर अस्वाध्याय रखनी चाहिए।

(१७) सूर्यग्रहण— सूर्य ग्रहण होने पर जघन्य बारह प्रहर एव उत्कृष्ट सोलह प्रहर तक अस्वाध्याय होती है। यदि सूर्य अस्त होते समय ग्रसित हो तो बारह प्रहर एव उगते समय ही ग्रसित हो जाय या दिनभर ग्रसित रहे तथा ग्रसित ही अस्त हो जाय तो उसकी सोलह प्रहर तक अस्वाध्याय रखनी चाहिए।

---

(१) स्त्रियोके मासिकधर्मकी तीन दिन, बालकका जन्म हो तो सात दिन, एव बालिकाका जन्म हो तो आठ दिन, तथा मनुष्यके अस्थिकी बारह वर्ष तक अस्वाध्याय रहती है। ऐसी स्थानाङ्गटीकाकी मान्यता है।

(१८) पतन— राजा, मन्त्री, सेनापति एव गावका मुखिया आदिका मरण होने पर जब तक दूसरे राजा आदि न बनें अर्थात् अशात वातावरण हो तब तक अस्वाध्याय रहती है तथा राजा आदिकी विद्य-मानतामे भी यदि राज्यमे अव्यवस्था व अशान्ति उत्पन्न हो जाय तो जब तक पुन व्यवस्था एवं शान्ति न हो तब तक अस्वाध्याय रहती है।

(१९) राजव्युद्ग्रह— राजा-सेनापति आदिका जहा युद्ध होता हो वहा स्वाध्याय करना निषिद्ध है।

(२०) औदारिकशरीर— उपाश्रयमे मनुष्यका मृतशरीर (मुर्दा) पडा हो तो सौ-सौ हाथ तक तथा तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रियका मृत शरीर पडा हो तो साठ-साठ हाथ तक स्वाध्याय करनेकी मनाही है।

उपर्युक्त औदारिक-सम्बन्धी अस्वाध्यायोंमे जो चन्द्र-सूर्यके ग्रहण गिने हैं उसका कारण यह है कि चन्द्र-सूर्यके विमान पृथ्वीकायमय रत्नोके हैं और उन रत्नोके शरीर औदारिक ही हैं।

(२१ से ३०) आषाढ, भाद्रव, आसोज, कार्तिक और चैत्रकी पूर्णिमायें तथा इनके बाद आनेवाली सावन, आसोज, कार्तिक, मृगशिर, और वैसाखकी प्रतिपदायें— इन दस तिथियोमे दिन-रात अस्वध्याय मानी जाती है।

(३१ से ३४) चार सन्ध्याएँ— प्रात, मध्याह्न सन्ध्या और मध्यरात्रि ये चार सन्ध्याएँ हैं। इनमे एक-एक मुहूर्त तक अस्वाध्याय रहती है। उपर्युक्त अस्वाध्यायोमे सूत्रका मूल पाठ पढनेका निषेध है, अर्थचिन्तनका निषेध नही है।

प्रश्न ३१— अस्वाध्यायोंमे स्वाध्याय करनेका निषेध क्यों किया गया?

उत्तर— कई अस्वाध्यायें देवोंसे सम्बन्धित हैं (पूर्णिमाओंके दिन देवता महोत्सवोंमें जाते-आते हैं तथा प्रात, मध्याह्न सन्ध्या और मध्यरात्रिके समय देव घूमा करते हैं) उनमे स्वाध्याय करनेसे देवो

द्वारा उपसर्ग होनेका भय रहता है क्योंकि देवोकी अर्धमागधी भाषा है[1] और सूत्रोकी भी वही भाषा है। आवश्यककार्यवश जाते-आते देवता कदाच सूत्र सुननेमे लीन हो जायँ और विलम्ब होनेसे उनका कुछ कार्य बिगड जाय तो उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक है ।

धूंवर, रक्त, मास या अशुचि आदिकी विद्यमानतामे स्वाध्याय करना लौकिकदृष्टिसे घृणित है तथा देवभाषाकी अवहेलना देखकर देवता भी कष्ट दे सकते हैं।

राजा आदिकी मृत्युके समय स्वाध्याय करना व्यवहारमे शोभा नही देता। लोग कहने लगते हैं कि ये तो मज़ेसे अपना पाठ कर रहे हैं, इनको हमारे दु खकी क्या परवाह है ? ऐसे ही राजविग्रहके समय भी देश अशान्त होता है, लोग दुःखी होते हैं, इसलिए उस समय भी स्वाध्याय करना लोकविरुद्ध है।

ऊपर कहे हुए या ऐसे अन्य कई कारणोको लक्ष्य करके आवश्यक, व्यवहार तथा निशीथ सूत्रमे अस्वाध्यायके समय स्वाध्याय करनेकी सख्त मनाही की है। व्यवहारभाष्यमे तो यहा तक कह दिया है कि अस्वाध्यायमे स्वाध्याय करनेवाला भगवान्‌की आज्ञाका भंग करता है, श्रुतज्ञानकी अशातना करता है एवं वक्त पर पागल एवं रोगग्रस्त होकर संयमसे भ्रष्ट हो जाता है।

प्रश्न ३२— श्रुतज्ञानके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावोंका विवेचन किस तरह है ?

उत्तर— द्रव्यसे — श्रुतज्ञानी अगर उपयुक्त हो अर्थात् पूर्णतया उपयोग लगाये तो सभी द्रव्योको जैसे सर्वज्ञ भगवान्‌ने कहा है उसी प्रकार जान-देख सकता है क्योंकि उत्कृष्टस्थितिमे वह चौदहपूर्वधारी होता है।

---

(१) भ. श—९—उ—४

क्षेत्रसे— श्रुतज्ञानी उपयोगयुक्त हो तो सर्व क्षेत्रको जान-देख सकता है।

कालसे— उपयोगयुक्त श्रुतज्ञानी सर्व कालको जान-देख सकता है।

भावसे— उपयोगयुक्त श्रुतज्ञानी औदयिक आदि सभी भावो-पर्यायोको जान-देख सकता है[1]।

प्रश्न ३३— श्रुतज्ञानका विशेष लाभ किसे हो सकता है?

उत्तर— बुद्धिके आठ गुणोको उपयोगमे लाने वालेको श्रुतज्ञानका विशेषलाभ होता है। वे आठ गुण ये हैं[2]— (१) सर्वप्रथम ज्ञानको सुनना चाहता है (२) फिर शकाके स्थलोको विनयपूर्वक पूछता है (३) पूछने पर गुरु जो कुछ कहते हैं उसे सावधानीसे सुनता है (४) सुन-कर उसे ग्रहण करता है (५) फिर उस पर विचार करता है (६) विचारके वाद उसका सम्यग् निश्चय करता है (७) फिर उसे हृदयमें धारण करता है (८) और अन्तमें धारण किए हुए ज्ञानके अनुसार आचरण करता है।

प्रश्न ३४— श्रुतज्ञान सुननेकी विशेषविधि क्या है?

उत्तर— श्रुतज्ञान सुननेके लिए सात बातें ध्यान देनेकी हैं[3]। (१) सर्वप्रथम मूक वनकर अर्थात् चुपचाप होकर सुनना (२) फिर

---

(१) नन्दी सूत्र ५७

(२) सुस्सूसइ १ पडिपुच्छइ २, सुणेइ ३ गिण्हइ ४ य ईहए ५ यावि।
तत्तो अपोहए ६ वा, धारेइ ७ करेइ वा सम्मं ८।
(नन्दी सूत्र ५७ गाथा ६५)

(३) मूयं हुकारं वा, बाढक्कारं पडिपुच्छ वीमसा।
तत्तोपसग पारायणं च, परिणिट्ठ सत्तमए॥
(नन्दी सूत्र ५७ गाथा ६६ तथा विशेपावश्यक-भाष्य गाथा ५६५)

हुँकारा देना—अर्थात् वन्दना करते हुए विनय दिखाना (३) उसके बाद बाढंकार करना यानी तहत्त आदि शब्दो द्वारा आपने जो कहा वह बिल्कुल सत्य है ऐसा भाव दिखलाना (४) फिर सदेह हो तो प्रश्न करना (५) फिर गुरु जो उत्तर दें उसकी प्रमाणिकता—सच्चाईको ढूढना (६) तत्पश्चात् उत्तरोत्तर प्रमाण प्राप्त करके उस विषयकी पूरी जानकारी प्राप्त करना (७) और अन्तमे उस ज्ञान को हृदयमे ऐसा जमा लेना कि काम पडने पर गुरुके समान स्वयं दूसरोको अच्छी तरह समझा सके।

प्रश्न ३५— श्रोता कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर— चौदह प्रकारके श्रोता माने गए हैं— (१) शैल जैसे यावत् (२) घट (३) चालनी (४) परिपूर्णक (५) हस (६) महिष (७) मेष (८) मशक (९) जौंक (१०) बिल्ली (११) जाहक (१२) गौ (१३) भेरीवादक (१४) और आभीरी जैसे [१]। इनका वर्णन निम्नलिखित है—

(१) शैल— जैसे—मुद्गशैल—चिकना गोल पत्थर पुष्कलावर्त-मेघके सात दिन—रात निरन्तर बरसने पर भी नही गलता, वैसे ही अति-शयज्ञानी आचार्योंका निरन्तर उपदेश सुनने पर भी जिनके हृदय पर बिल्कुल असर नही होता, वे श्रोता मुद्गशैलवत् अयोग्य होते हैं। इसके प्रतिपक्षमें काली मिट्टी तुल्य योग्य श्रोता ज्ञानी गुरुके उपदेशको सुननेके साथ ही ग्रहण कर लेते हैं।

(२) घट— घडा चार प्रकारका होता है— एक टूटी गर्दनवाला दूसरा एक तरफ बीचमे फूटा हुआ, तीसरा नीचेसे फूटा हुआ और चौथा अखण्ड। पहलेमे अखण्ड घडे की अपेक्षासे कुछ कम पानी रहता है, दूसरेमे उससे कम रहता है, तीसरेमे बिलकुल नही रहता और चौथेमे पूरा पानी रहता है। ऐसे ही अखण्ड घडेके समान गुरुज्ञानको पूर्णतया

(१) नन्दी पीठिका गाथा—५१

ग्रहण करनेवाले श्रोता सुयोग्य एवं नीचेसे फूटे हुए घडे–जैसे श्रोता बिल्कुल अयोग्य होते हैं तथा शेष दोनो प्रकारके घड़ो–जैसे श्रोता कुछ-कुछ योग्य माने गए हैं।

(३) चालनी— जैसे चालनी ऊपरसे पानीको ग्रहण करके नीचेसे तत्काल निकाल देती है, वैसे ही चालनीतुल्य श्रोता इधरसे सुनते हैं और इधरसे भूल जाते हैं, वे अयोग्य हैं। प्रतिपक्षमें कमण्डलुकी तरह ज्ञानरूप जलको धारण करनेवाले श्रोता योग्य हैं।

(४) परिपूर्णक– घृत आदि छाननेके तृणादिमय साधनको परिपूर्णक कहते हैं। जैसे परिपूर्णक सारघृतको छोडकर मात्र मलको धारण करता है, उसी प्रकार कई श्रोता सद्ज्ञानको छोडकर मात्र दोषोको ही ग्रहण करते हैं, वे शास्त्र–श्रवणके आयोग्य हैं।

(५) हस— हस जैसे मिले हुए दूध–पानीसे मात्र दूधको ग्रहण करता है उसी तरह कई श्रोता वक्ताके दोषोको छोडकर सिर्फ गुणोको लेते हैं, वे शास्त्र–श्रवणके योग्य हैं।

(६) महिष— भैंसा जैसे जलाशयके जलको डोला देता है, वैसे ही कई श्रोता सभामे कोलाहल करके न तो स्वय ज्ञान सुनते और न दूसरोको सुनने देते, वे अयोग्य हैं।

(७) मेष— भेड जैसे जलको डोलाए विना किनारे रहकर शान्तिसे जल पी लेती है, वैसे ही कई श्रोता चुपचाप रहकर उपदेश सुनते हैं, वे सुयोग्य हैं।

(८) मशक— मच्छर डक लगाकर जैसे लोगोको दु:खी वनाता है, वैसे ही कुवचनरूपी डक मारकर कई श्रोता गुरुको उद्विग्न वना देते हैं, वे अयोग्य एव त्याज्य हैं।

(९) जोक— जैसे जोंक कष्ट पहुंचाये विना ही खून पी जाती है, वैसे कई श्रोता गुरुको बिल्कुल कष्ट न देते हुए शास्त्र सुनते हैं एव

उनका सार खीचते हैं, वे सुयोग्य हैं।

(१०) बिल्ली- जैसे बिल्ली भाजनसे नीचे गिराकर धूलयुक्त दूधको पीती है, वैसेही कई श्रोता अहंकारवश गुरुके पास आकर ज्ञान नही सुनते, किन्तु सुनकर जाते हुए लोगोंके आपसी-सभापणमे सुनना चाहते हैं, वे ज्ञान देनेके अयोग्य हैं।

(११) जाहक— (उन्दर जातिका एक जन्तु विशेष) जैसे जाहक भाजनमे से थोडा-थोडा दूध पीकर वाजूके भागको चाटता है और फिर पीता है, वैसे ही कई श्रोता पहले सुने हुए उपदेशको मनन करते जाते हैं और फिर नया पूछते जाते हैं, किन्तु गुरुको खिन्न नही होने देते, वे ज्ञानदानके योग्य हैं।

(१२) गौ— गाय जैसे घास-फूस खाकर अपने स्वामीको अमृत तुल्य दूध देती है, उसी तरह कई श्रोता ज्ञान सुनानेवाले गुरुकी अधिका-धिक सेवा-शुश्रूषा करके उन्हे बहुत-वहुत साता देते हैं, वे ज्ञानदानके योग्य हैं।

(१३) भेरीवादक— द्वारका नगरीमे एक दिव्यभेरी वर्षमे दो वार बजाई जाती थी। उसके प्रभावमे छः मास पर्यन्त रोगकी शान्ति रहती थी। शिरः-शूलसे पीडित एक धनी मनुष्य ने भेरीवादकको रिश्वत देकर भेरीका एक टुकडा लेकर अपना रोग शान्त कर लिया। भेरीवादकने उसकी जगह दूसरा टुकडा जोड दिया। पता पाकर धनी लोग आ-आकर गुप्तरूपसे भेरीके खण्ड लेने लगे। आखिर नये-नये खण्ड जोडे जानेसे वह भेरी कन्था-सी बन गई एवं उसका दिव्यप्रभाव नष्ट हो गया। भेद खुलनेसे श्रीकृष्णने उस भेरी बजानेवालेको दण्डित करके निकाल दिया एव दूसरी दिव्यभेरी प्राप्त करके रोगोपशान्तिकी व्यवस्था की। भेरीवादकके समान जो व्यक्ति शास्त्रवाणीको खण्डित करके उसमे दूसरे वाक्य मिला देते हैं, वे ज्ञानदानके लिए विल्कुल अयोग्य हैं।

(१४) आभीरी— अहीर-अहीरिनियाँ घी वेचने एक शहरमे गए। गाडीसे घी का घडा उतारते समय एक अहीरिनीकी असावधानीसे नीचे गिर पडा एव कुछ घी जमीन पर ढुल गया। अहीरने उसे कुछ उलाहना दिया। वह क्रुद्ध होकर पतिसे लडने लगी और प्रत्युत उसकी गल्ती निकालने लगी। इतनेमे ढुले हुए घीको कुत्ते खा गए एवं दूसरे अहीर अपना घी वेचकर गाव चले गए। काफी देर तक लड-झगड कर आखिर वचा-खुचा घी वेचकर वह पतिसहित अपने गावकी ओर रवाना हुई। रास्तेमें चोर-डाकू मिले और उसके रुपये-पैसे लूट लिए। इसी तरह एक दिन एक दूसरी अहीरिनीके हाथसे भी घी का घडा गिर गया। पतिने उलाहना दिया, उसने सविनय अपनी गल्ती स्वीकारकी एवं ढुले हुए घी को यत्नपूर्वक उठा लिया और तत्क्षण वेचकर साथियोंके साथ ही अपने गाव पहुँच गई।

इन दृष्टान्तोका रहस्य यह है कि जो श्रोता (शिष्य) सूत्रार्थके ग्रहण करनेमे स्खलना करके उलाहना देने पर उल्टा गुरुका दोष निकालता है वह प्रथम अहीरिनीवत् दुःखी होता है तथा जो अपनी भूल स्वीकार करके क्षमा याचना कर लेता है वह दूसरी अहीरिनीवत् सुखी होता है। पहला श्रुतज्ञानके अयोग्य एव दूसरा सुयोग्य माना जाता है।

प्रश्न ३६— सभा कितनी तरहकी होती है?

उत्तर— सभा तीन तरहकी मानी गई है— ज्ञायिका, अज्ञायिका और दुर्विदग्धा[१]। श्रोताओंके समूहका नाम सभा है।

(१) ज्ञायिका जिसके श्रोता हसकी तरह गुणी एव गुणग्राही होते हैं उसको ज्ञायिका सभा कहते हैं। ज्ञायिका अर्थात् विज्ञोकी सभा।

(२) अज्ञायिका— जिसके श्रोता मृग, सिंह एव कुर्कटके छोटे वच्चोकी तरह प्रकृतिसे मधुर एव भद्र होते हैं तथा असस्थापितरत्नके

---

(१) नन्दी-पीठिका गाथा ५२-५३-५४

समान होते हैं, उसको अज्ञायिका सभा कहते हैं। तत्त्व यह है कि जैसे भोले-भाले बच्चोको चाहे जैसा बनाया जा सकता है एव असस्थापित-रत्नको चाहे जिस आभूषणमे बिठाया जा सकता है, वैसे सरल एवं भद्र श्रोताओको सहजमे ही समझाया जा सकता है।

(३) दुर्विदग्धा— जिस सभाके श्रोता ग्रामीण-पण्डितकी तरह न तो कुछ जानते और न ही अपमानके भयसे किसीसे कुछ पूछते। अभिमानके वश फुटबॉलकी तरह फूले-फूले फिरते हैं। ऐसे श्रोताओकी सभाको दुर्विदग्ध कहते हैं। यह सभा ज्ञानदानके अयोग्य है।

प्रश्न ३७— किस-किस बातका ज्ञाता-जानकार होना आवश्यक है?

उत्तर— आचाराङ्ग श्रु. १। अ. २। उ. ५। सूत्र- ८८ में मुनि नौ बातके ज्ञाता होते हैं ऐसे कहा है। जैसे—

(१) कालज्ञ— काम करनेके अवसरको जाननेवाले होते हैं।

(२) बलज्ञ— अपने बल-शक्तिको जाननेवाले होते हैं।

(३) मात्रज्ञ— आहारादि वस्तुओकी मात्रा-परिमाणको जाननेवाले होते है।

(४) खेदज्ञ— संसारचक्रवालमे परिभ्रमण करनेसे होनेवाले खेद-दु:खको जाननेवाले होते हैं।

अथवा, क्षेत्रज्ञ— संसक्त आदि द्रव्य तथा भिक्षाके लिए छोडने योग्य कुलोको जाननेवाले होते हैं।

(५) क्षणज्ञ— भिक्षाके क्षेण अर्थात् उचित समयको जाननेवाले होते हैं।

(६) विनयज्ञ— ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदिके भक्तिरूप-विनयको जाननेवाले होते हैं।

(७) स्वसमयज्ञ— अपने सिद्धान्त तथा आचारको जाननेवाले

होते हैं।

(८) परसमयज्ञ— दूसरोंके सिद्धान्तको जाननेवाले होते हैं क्योंकि दूसरोके सिद्धान्तोका ज्ञान किए विना अपने सिद्धान्तकी विशेषता बताई नही जा सकती।

(९) भावज्ञ— दाता और श्रोताके भाव–अभिप्रायको समझने वाले होते हैं।

प्रश्न ३८— ज्ञानी कितने प्रकारके हैं

उत्तर— नौ प्रकारके निपुण–ज्ञानी माने गए है[1]—

(१) संख्यान— गणितशास्त्रके जानकार

(२) निमित्त— चूडामणि प्रमुख निमित्तशास्त्रोंके जानकार

(३) कायिक— शरीरकी ईडा–पिङ्गला आदि नाडियोके जानकार अर्थात् प्राणतत्त्वके विद्वान्।

(४) पुराण— जिन्होने लम्बे अरसे तक दुनियाको देखकर वहुत ज्यादा अनुभव प्राप्त किए हैं ऐसे वृद्धव्यक्ति अथवा पुराण नामक ग्रन्थोंके विशेष जानकार व्यक्ति।

(५) पारिहस्तिक— जो अपना सव प्रयोजन समय पर पूराकर लेते हैं ऐसे स्वभावसे ही निपुणव्यक्ति।

(६) परपण्डित— अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले, पर अर्थात् उत्कृष्ट पण्डित अथवा पण्डितोंके साथ रहनेसे वहुत–कुछ सीख जानेवाले व्यक्ति।

(७) वादी— जिन्हे दूसरा सहजमे न जीत सके ऐसे शास्त्रार्थ करनेमे निपुणव्यक्ति।

(८) भूतिकर्म— ज्वरादि उतारनेके लिए मन्त्रित भभूत वगैरह देनेमे निपुणव्यक्ति।

---

(१) स्था–९–उ–३–सूत्र–६७९

(६) चैकित्सिक— रोगोकी चिकित्सा करनेमे निपुणव्यक्ति वैद्य, हकीम, डाक्टर आदि।

निमित्तादिके विशेष जानकार होनेके कारण व्यवहारदृष्टिसे उपर्युक्त व्यक्ति निपुण कहे गए हैं, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टिसे आत्मकल्याणकारि-शास्त्रोके विशेष जानकार एवं तदनुसार आचरण करनेवाले व्यक्ति ही निपुण होते हैं, अस्तु!

तीसरापुञ्ज

प्रश्न १— अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर— इन्द्रिय और मनकी सहायताके विना जो केवल आत्मा-के सहारेसे उत्पन्न होता है एवं मर्यादासहित रूपी द्रव्योको जानता है, उमे अवधिज्ञान कहते है। अवधिका अर्थ यहा मर्यादा है। अवधिज्ञान अर्थात् मर्यादासहित ज्ञान। इसमे अनेक प्रकारकी मर्यादायें-सीमायें हैं। जैसे-एकव्यक्ति छोटी चीजको जानता है, दूसरा उससे वडी, तीसरा उससे भी वडी चीज़को जान लेता है। एक व्यक्ति एक आगुल क्षेत्र देखता है, दूसरा एक कोस, तीसरा एक योजन, चौथा मनुष्यलोक एवं पाचवाँ समूचालोक देख लेता है। एक व्यक्ति एक घंटाकी वात जानता है, दूसरा एकवर्षकी, तीसरा लाख वर्षोंकी, चौथा संख्यातवर्षोंकी और पाँचवा असख्यातवर्षोंको वात जान लेता है।

प्रश्न २— अवधिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर— मुख्य भेद दो हैं— भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक[1]। अमुक-अमुक जातिके जीवोमे जो अवधिज्ञान भव अर्थात् जन्मके साथ अनिवार्यरूपसे पाया जाता है उसे भवप्रत्ययिक-अवधिज्ञान कहते हैं और जो अवधिज्ञान भवसे सम्वन्ध न रखते हुए क्षयोपशमकी प्रधानतामे उत्पन्न होता है उमे क्षायोपशमिक (गुणप्रत्ययिक) अवधिज्ञान कहते हैं[2]।

---

(१) नन्दी सूत्र— ६-७-८ तथा प्रज्ञापना पद-३३ तथा स्था. स्था. २ उ. १ सूत्र ७१

(२) दिगम्बर गुणप्रत्ययिक-अवधिज्ञानके तीन भेद मानते हैं— देशावधि, परमावधि और सर्वावधि

भवप्रत्ययिक-अवधिज्ञान देवताओ और नारकोमे होता है एवं क्षायोपशमिक–अवधिज्ञान मनुष्यो और तिर्यञ्चोमे होता है।

यद्यपि अवधिज्ञानावरणीयकर्मका क्षयोपशम दोनो ही प्रकारके अवधिज्ञानोमे आवश्यक है। फिर भी देवो–नारकोमे उत्पत्तिके साथ ही सामान्यतया क्षयोपशम विद्यमान रहता है अतः उनका अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक-जन्मसिद्ध कहलाता है और मनुष्यो–तिर्यञ्चोमे हरएकको जन्मके साथ नही होता, किन्तु जिनके अवधिज्ञानवरणीयकर्मका विशेष क्षयोपशम होता है, उन्ही तीर्थंकरादि विशेष व्यक्तियोको उत्पन्न होता है अतः वह क्षायोपशमिक कहलाता है।

प्रश्न ३— अवधिज्ञान कितने प्रकारका है ?

उत्तर— छः प्रकारका है[1]— (१) आनुगामिक (२) अनानुगामिक (३) वर्धमान (४) हीयमान (५) प्रतिपाति (६) अप्रतिपाति।

(१) आनुगामिकअवधिज्ञान— जो आंखोकी तरह सदा व्यक्तिके साथ रहता है यानि उत्पत्तिक्षेत्रको छोडकर दूसरी जगह जाने पर भी साथ रहता है उसे आनुगामिकअवधिज्ञान कहते हैं। यह कई प्रकारका होता है[2]— कोई अवधिज्ञान आगेका ज्ञान करता है, कोई पीछेका ज्ञान करता है, कोई पार्श्व भागोका ज्ञान करता है और कोई मस्तक पर रखे हुए दीपककी तरह सब दिशाओका ज्ञान करता है।

आगेका ज्ञान करनेवाला अवधिज्ञान आगे सख्यात–असंख्यात योजन क्षेत्रको जानता–देखता है। पीछेका ज्ञान करनेवाला पीछेके सख्यात–असख्यातयोजन क्षेत्रको जानता-देखता है। पार्श्वभागोका ज्ञान करनेवाला दोनो पार्श्वभागोमे सख्यात असख्यातयोजन क्षेत्रको जानता–देखता है और मस्तक पर दीपककी तरह मध्यभागमे रहकर ज्ञान करने–

(१) स्था–६–सूत्र– ५२६ तथा नन्दी सूत्र ६

(२) नन्दी सूत्र -१०

वाला चारो ओर सख्यात–असख्यातयोजन क्षेत्रको जानता–देखता है।

(२) अनानुगामिकअवधिज्ञान[1]— जो किसी निश्चित स्थानमे रहे हुए अग्निपुञ्जकी तरह मात्र अपने उत्पत्तिस्थानमे प्रकाश करता है उसे अनानुगामिकअवधिज्ञान कहते हैं। इसका स्वामी यदि ज्ञानोत्पत्ति–स्थानको छोडकर कही अन्यत्र चला जाय तो उसे कुछ नही दीखता और लौटकर मूलस्थानमे आ जाय तो उसे सख्यात–असख्यातयोजन क्षेत्रमे रहे हुए सवद्ध या असवद्ध (परस्पर सम्बन्धरहित) सभी पदार्थ दीखने लग जाते हैं।

(३) वर्धमानअवधिज्ञान[2]— जैसे अरणि आदिसे उत्पन्न छोटी–सी आगकी चिनगारी इन्धनको पाकर क्रमश. वढती जाती है, उसी तरह जो अवधिज्ञान उत्पत्तिके समय बहुत थोडा प्रकाश करनेवाला होकर भी परिणामशुद्धि एव चारित्रशुद्धि रूप इन्धनको पाकर क्रमश· वढताही जाता है उसे वर्धमानअवधिज्ञान कहते हैं। इसका जघन्यक्षेत्र आगुलका असख्यातवा भाग है अर्थात् तीन समयके आहारक सूक्ष्मनिगोदके जीवकी जघन्य अवगाहना जितना क्षेत्र है और उत्कृष्ट क्षेत्र समूचालोक है यानी सूक्ष्म–वादर रूप सवसे अधिक अग्निकायके[3] जीवोंमे निरन्तर चारो दिशाओमे जितना क्षेत्र भरा है उतने क्षेत्रमे रहे हुए रूपी द्रव्योको यह जान सकता है तथा इनके मध्यम क्षेत्र और कालकी वढती हुई सीमा क्रमशः इस प्रकार है—

---

(१) नन्दी सूत्र–११

(२) नन्दी सूत्र–१२

(३) सबसे अधिक मनुष्य अवसर्पिणीकालके दूसरे तीर्थंकरके समय होते हैं (जैसे अजितप्रभुके समय हुए थे) मनुष्योंकी वृद्धिके समय वादर–अग्निके जीवभी सर्वाधिक होते हैं। क्योकि अग्निका प्रयोग मुख्यतया मनुष्यही विशेष करते हैं (नन्दीटीकाके आधारसे)

जो आंगुलके असख्यातवें भाग क्षेत्रको जानता है वह आवलिकाके असंख्यातवें भाग कालको जानता है। (एक करोड़ ६७ लाख ७७ हज़ार २१६ आवलिकाओंका एक मुहूर्त-४८ मिनट होते हैं)। जो आगुलके सख्यातवेंभाग क्षेत्रको जानता है वह आवलिकाके सख्यातवेंभाग कालको जानता है। जो एक आंगुल क्षेत्रको देखता है वह आवलिकासे कुछ कम कालको जानता है। जो अंगुल-पृथक्त्व (दो से नव आंगुल) क्षेत्रको देखता है वह एक आवलिका-कालको जानता है। एक हाथ क्षेत्रको देखनेवाला अन्तमुहूर्त-कालकी बातको जानता है। एककोसक्षेत्रको देखनेवाला एक दिनकी बात जान-देख सकता है। एकयोजनक्षेत्रको देखनेवाला दिन-पृथक्त्वकी बात, पच्चीसयोजनक्षेत्रको देखनेवाला पक्षसे कुछ कम समयकी बात, भरतक्षेत्रको देखनेवाला एक पक्षकी बात, जम्बूद्वीपको देखनेवाला एक माससे कुछ अधिक समयकी बात, मनुष्यलोक (ढाईद्वीप) को देखनेवाला एक वर्षकी बात, रुचकद्वीप (पन्द्रहवें) तक देखनेवाला वर्ष-पृथक्त्वकी बात एव सख्यातद्वीप-समुद्रोको देखनेवाला सख्यातकाल (हज़ार वर्षसे अधिक) की बातको जान-देख सकता है। किन्तु जो असख्यातकालकी बात जानता है वह क्षेत्रसे असख्यात, संख्यात व द्वीप-समुद्रका एकदेश भी देख सकता है।

यहा तत्त्व यह है कि यदि किसी मनुष्यको असख्यकालका अवधिज्ञान हो तो वह असंख्यद्वीप-समुद्र देख सकता है। मनुष्यलोकसे बाहरके द्वीप-समुद्रोमे किसी तिर्यञ्चको यदि असख्यकाल-विषयक अवधिज्ञान हो तो वह संख्यात द्वीप-समुद्र देख सकता है तथा स्वयम्भूरमण द्वीप या स्वयम्भू रमण समुद्रमे किसी तिर्यञ्चको यदि उक्त प्रकारका अवधिज्ञान हो तो वह मात्र उसी द्वीपया समुद्रका कुछ भाग देख सकता है, कारण अन्तिम द्वीपसमुद्र अकेले ही पिछले असख्योमे बहुत ज्यादा बडे हैं।

(४) हीयमानअवधिज्ञान[1] जैसे विशाल अग्निकी ज्वाला नवीन

---

(१) नन्दी सूत्र- १२

ईन्धन नही मिलनेसे क्रमशः घटती जाती है उसी प्रकार जो अवधिज्ञान परिणामशुद्धि एव चारित्रशुद्धिरूप ईन्धनके नही मिलनेसे अर्थात् भावना और आचरण दूषित होनेसे उत्पत्ति समयकी अपेक्षा क्रमश. घटता जाता है उसे हीयमानअवधिज्ञान कहते हैं।

(५) प्रतिपातिअवधिज्ञान[1]— जो अवधिज्ञान उत्कृष्ट समूचे लोकको देखकर पुन. गिर जाता है— चला जाता है उसे प्रतिपाति-अवधिज्ञान कहते हैं।

(६) अप्रतिपातिअवधिज्ञान[2]— जो भवक्षय या केवलज्ञान होनेसे पहले नष्ट नही होता एव समूचा लोक देखकर अलोकका एक भी आकाश-प्रदेश जान लेता है उसे अप्रतिपातिअवधिज्ञान कहते हैं।

प्रज्ञापना पद-३३-मे अवधिज्ञानके आठ भेद कहे हैं। वहा अनवस्थित और अवस्थित-ये दो नाम अधिक हैं। अनवस्थितका अर्थ है जलतरङ्गोकी तरह घटने-वढनेवाला एवं अवस्थितका अर्थ है उत्पन्न होनेके बाद सदा यथारूप रहनेवाला।

प्रश्न ४— पाया हुआ अवधिज्ञान क्यों चला जाता है ?

उत्तर— अवधिज्ञान चलित होनेके निम्नलिखित पाच कारण माने गए हैं[3]।

(१) अवधिज्ञानी थोडी पृथ्वी देखकर यह क्या ? ऐसे आश्चर्यसे क्षुब्ध हो जाता है क्योंकि इस ज्ञानसे पहले वह बहुत विशाल-पृथ्वीकी सभा-वना करता था।

(२) अत्यन्त प्रचुर कुन्थुओकी राशिरूप पृथ्वी देखकर विस्मय और दयावश अवधिज्ञानी चकित रह जाता है।

(३) बाहरके द्वीपोमे होनेवाले एक-एक हजार योजनकी अवगाहना

(१) नन्दीसूत्र १४
(२) नन्दीसूत्र-१२
(३) स्था- ५. उ. १ सूत्र-- २१४

वाले महासर्पोको देखकर विस्मय और भयवश अवधिज्ञानी घबडा उठता है।

(४) देवोको महाऋद्धि, द्युति, प्रभाव. बल और सुखोंसे युक्त देखकर अवधिज्ञानी आश्चर्यान्वित हो जाता है।

(५) ग्राम, आकर, नगर, राजमार्ग, गलिया, गन्देगटर. श्मशान, सूनेघर, गुफा आदि स्थानोमे गुप्तरूपसे रहे हुए बहुमूल्य रत्नादिके निधानोको देखकर अवधिज्ञानी विस्मय एवं लोभवश चञ्चल हो जाता है।

उत्पन्न होता हुआ अवधिज्ञान उपर्युक्त पांच कारणोंसे प्रारम्भमे ही नष्ट हो जाता है।

प्रश्न ५— पूर्वोक्त आनुगामिक आदि आठ प्रकारके अवधिज्ञानमें से किन-किन जीवोमें कौन-कौनसा होता है ?

उत्तर— मनुष्यो-तिर्यञ्चोंमे आठो प्रकारका अवधिज्ञान होता है, किन्तु देवो-नारकोमे तीन प्रकार ही हो सकता है— आनुगामिक, अवस्थित और अप्रतिपाति[1]।

प्रश्न ६— कौन-कौन जीव अवधिज्ञानसे कितना-कितना क्षेत्र देख सकते हैं ?

उत्तर— प्रथम नरकके जीव जघन्य ३॥ कोस और उत्कृष्ट ४ कोस तक ऊपर, नीचे एव तिरछे देखते है। दूसरीवाले जघन्य ३ उत्कृष्ट ३॥ कोस, तीसरीवाले २॥ और ३, चौथी वाले २ और २॥ कोस, पाँचवीवाले १॥ और २ कोस, छठी वाले १ और १॥ कोस और सातवी नरकवाले जघन्य आधा कोस और उत्कृष्ट एक कोस तक देखते है।

असुरकुमार जघन्य २५ योजन और उत्कृष्ट ऊपर प्रथम स्वर्ग, नीचे तीसरी नरक और तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्र देखते हैं। नागकुमारादि नवनिकायके देव और वाणमन्तर देव जघन्य २५ योजन एव उत्कृष्ट ऊपर

---

(१) प्रज्ञापना पद ३३

प्रथम स्वर्ग, नीचे प्रथम नरक तथा तिरछे संख्यात द्वीप-समुद्र देखते हैं। ज्योतिषी देवता ऊपर प्रथम स्वर्ग, नीचे दूसरी नरक एवं तिरछे संख्यात द्वीप-समुद्र देखते हैं।

वैमानिक देवता ऊपर अपने-अपने विमानो के ध्वज देखते हैं। तिरछे पहले-दूसरे स्वर्गवाले सख्यात[1]- असख्यात द्वीप-समुद्र देखते हैं एव ऊपरवाले सब असख्यात द्वीप-समुद्र देखते हैं। नीचेकी ओर १-२ स्वर्गवाले पहली नरक तक, ३-४ वाले दूसरी नरक तक, ५-६ वाले तीसरी नरक तक, ७-८ वाले चौथी नरक तक, ९-१०-११-१२ वाले पाचवी नरक तक, ग्रैवेयकोमे १३ से १८ स्वर्गवाले छठी नरक तक, १९-२०-२१ वाले सातवी नरक तक देखते है और (२२ से २६) पाच-अनुत्तर विमानवाले सम्पूर्ण चौदह रज्ज्वात्मक-लोकनाडी देखते है। कौनसा जीव कितने कालकी वात जान सकता है, वह वर्धमान-अवधिज्ञानके वर्णनने समझ लेना चाहिए। तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जघन्य आगुलका असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट ऊपर प्रथम स्वर्ग, नीचे प्रथम नरक और तिरछे असख्यात द्वीप-समुद्र देखते हैं।

मनुष्य जघन्य आगुलका असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट समूचा लोक देखते हैं और अलोकमे लोक जैसे असख्य खण्ड हो तो देख सकते है, लेकिन हैं नही[2]।

प्रश्न ७— अवधिज्ञानका संस्थान-आकार क्या है ?

उत्तर— नारकोका अवधिज्ञान छोटी नावाके आकारवाला होता है अर्थात् वे जीव आयत एव तिकोणाक्षेत्र देखते है। भवनपति देवोका

(१) प्रथम-द्वितीय स्वर्गमे पल्योंके आयुष्यवाले संख्यात द्वीप समुद्र ही देखते है।

(२) प्रज्ञापना पद-३३

पल्य–धान्य भरनेकी पायलीके आकारवाला होता है। व्यन्तरदेवोका पडह्-ढोलके समान होता है। ज्योतिषीदेवोका झालर-घंटाके तुल्य होता है। बारह देवलोकवालोका मृदङ्ग--मादलके सदृश होता है। नव ग्रैवेयक देवोका पुष्पचगेरी–सात शिखावाली फूलोसे भरी हुई छावके समान होता है। अनुत्तर विमानवासीदेवोका कुवारी कन्याकी कंचुकीके तुल्य आकार-वाला होता है तथा मनुष्य-तिर्यञ्चोका अवधिज्ञान नाना प्रकारकी आकृतिवाला होता है[1]।

प्रश्न ८— क्या अवधिज्ञानसे मनकी बात भी जानी जा सकती है?

उत्तर— हा! जानी जा सकती है क्योकि चिन्तनमे सहायता करनेवाले मनोवर्गणाके पुद्गल रूपी होते हैं अत अवधिज्ञानी अपने ज्ञानसे उन पुद्गलोको देखकर उनके अनुसार मनकी बात जान लेते हैं। जैसे— सदेह उत्पन्न होने पर अनुत्तरविमानवासी देवता वहीसे केवली भगवान्को प्रश्न पूछते हैं। केवलज्ञानी मनहीमे उनका उत्तर देते हैं एवं वे देवता अवधिज्ञान द्वारा उसे समझ लेते हैं[2]।

प्रश्न ९— परमअवधिज्ञानका क्या अर्थ है?

उत्तर— जिस अवधिज्ञानके होने पर जीवकी मुक्ति अवश्य होती है[3] एवं जो केवलज्ञानसे मात्र अन्तरमुहूर्त पहले उत्पन्न होता है[4]। उसे परमअवधिज्ञान कहते हैं। परम अर्थात् सर्वोत्कृष्ट एव सर्वश्रेष्ठ-अवधिज्ञान।

प्रश्न १०— अवधिज्ञानके द्रव्य--क्षेत्र–काल–भाव समझाइए?

---

(१) प्रज्ञापना पद ३३

(२) भगवती शतक, ५ उ. ४

(३) भगवती शतक. ७ उ ७

(४) भगवती शतक १८ उ ८ टीकाके आधारसे

उत्तर— द्रव्यसे— अवधिज्ञानी जघन्य अनन्त रूपीद्रव्योंको और उत्कृष्ट सब रूपी द्रव्योंको जानता-देखता है।

क्षेत्रसे— अवधिज्ञानी जघन्य आगुलका असंख्यातवा भाग और उत्कृष्ट सम्पूर्णलोकको जानता-देखता है और आलोकमे भी असंख्यलोक जितने क्षेत्रको देखनेकी शक्ति है, लेकिन वहा रूपी पदार्थ न होनेसे देखनेके लिए कुछ नही है।

कालसे— जघन्य आवलिकाके असंख्यातवें भाग जितना काल और उत्कृष्ट असंख्यउत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तकके भूत-भविष्यको जानता-देखता है।

भावसे— जघन्य द्रव्योंकी अनन्तपर्यायें और उत्कृष्ट भी अनन्त-पर्यायें (सब पर्यायोंके अनन्तवें भाग जितनी) जानता-देखता है[1]।

प्रश्न ११— द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें कौन किससे सूक्ष्म-सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम है?

उत्तर— सर्वप्रथम काल सूक्ष्म है क्योंकि चक्षुनिमेष जितनी देरमे असंख्य समय बीत जाते हैं।

कालसे क्षेत्र सूक्ष्मतर है कारण, प्रमाण-अङ्गुल मात्र क्षेत्रकी श्रेणियोंमे इतने आकाश-प्रदेश हैं कि उनमेसे यदि प्रतिसमय एक-एक आकाश प्रदेशका हरन किया जाए तो असंख्य अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकाल पूर्ण हो जावें। तत्त्व यह है कि प्रमाण अङ्गुल जितने क्षेत्रमे आकाश-प्रदेशोंकी असंख्य श्रेणिया हैं और प्रत्येक श्रेणीमे अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी कालके समयों जितने आकाश-प्रदेश हैं।

क्षेत्रसे द्रव्य सूक्ष्मतम है क्योंकि एक-एक आकाश प्रदेश मात्र क्षेत्रमे अनन्तानन्त परमाणु, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् असंख्य, अनन्त प्रदेशी-स्कन्ध समा सकते है।

---

(१) नन्दी सूत्र १६

द्रव्यसे भाव और भी अधिक सूक्ष्मतम है कारण प्रत्येकपरमाणुमे अनन्तानन्त भाव-पर्यायें (अवस्थायें) हैं[1] ।

प्रश्न १२— मन.पर्यवज्ञानका क्या अर्थ है ?

उत्तर— इन्द्रिय और मनकी सहायताके विना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे मर्यादापूर्वक जो ज्ञान सज्ञी-मनवाले जीवोंके मनमे रहे हुए भावो-पर्याओंको जानता है उसे मन पर्यवज्ञान कहते हैं। पर्यवका अर्थ पर्याय-अवस्था है ।

संज्ञी जीव प्रत्येक वस्तुका चिन्तन मनसे करते हैं। चिन्तनके समय वस्तुका जो भी विषय होता है, आत्मा द्वारा ग्रहण किए गए मनोवर्गणाके पुद्गल उसीके अनुरूप आकृतियां-आकार धारण कर लेते हैं । वे आकृतिया ही मनके पर्याय हैं और मन:पर्यवज्ञानी उन्हे ही साक्षात् जानता है ।

प्रश्न १३— मन.पर्यवज्ञानी यदि मनोवर्गणाके पुद्गलोंकी आकृतियोंको ही जानता है तो फिर मनमें सोची हुई वस्तुओंको कैसे वतला देता है ?

उत्तर— जैसे मानस-शास्त्रका अभ्यासी किसी एक व्यक्तिके चेहरे को या हाव-भावको प्रत्यक्ष देखकर उनके आधार पर उस व्यक्तिके मनोगत भाव व सामर्थ्यको अनुमानसे जान लेता है, उसी प्रकार मन:-पर्यवज्ञानवाला अपने ज्ञानसे मनकी आकृतियोको देखकर निश्चितरूपसे अनुमान लगा लेता है[2] कि इस व्यक्तिके मनमे यही वात है ।

प्रश्न १४— मन.पर्यवज्ञान कितने प्रकारका है ?

उत्तर— ऋजुमति और विपुलमति ऐसे दो प्रकारका माना गया

---

(१) नन्दी सुत्र-१२ गाथा ६२ तथा आचाराङ्गनियुक्ति-वृत्तिके आधारसे

(२) विशेषावश्यकभाष्य गाथा ८१२ से ८१४ के आधारसे

है[1]। दूसरेके मनमे सोचे हुए पदार्थको सामान्यरूपसे जानना ऋजुमतिमन पर्यवज्ञान है और विशेषरूपसे जानना विपुलमति मनःपर्यवज्ञान है। जैसे—ऋजुमतिवाला कहेगा कि अमुक व्यक्तिने घडा लानेका विचार किया है और विपुलमतिवाला उससे आगे यह भी कह देगा कि अमुक व्यक्तिने जिस घडेको लानेका विचार किया है वह घटा अमुक रगका एव अमुक आकारका है तथा अमुक समयका एव अमुक स्थानका बना हुआ है। इसके सिवा ऋजुमति मन पर्यवज्ञान उत्पन्न होकर चला भी जाता है, किन्तु विपुलमतिमन पर्यवज्ञान होनेके बाद कभी नही जाता अर्थात् अवश्य केवलज्ञान प्राप्त करता है।

प्रश्न १५— मन पर्यवज्ञानके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव बतलाइये ?

उत्तर— ऋजुमतिमन पर्यवज्ञानवाला द्रव्यसे मनोवर्गणाके अनन्त-प्रदेशी अनन्तस्कन्धोको जानता-देखता है।

क्षेत्रसे— जघन्य आगुलके असंख्यातवें भाग क्षेत्र और उत्कृष्ट नीचे-प्रथम नरकके ऊपरीभागवाले नीचेके छोटे प्रतरो तक, ऊपर-ज्योतिष्क विमानोंके ऊपरवाले तले तक तथा तिरछा-मनुष्यक्षेत्र (ढाई द्वीप और दो समुद्र) मे रहे हुए सज्ञी जीवोके मनोगत भावोको जानता-देखता है।

कालसे— जघन्य-उत्कृष्ट पल्योपमके असख्यातवें भाग जितने भूत-भविष्यत्कालको जानता-देखता है।

भावसे— चिन्तनमे परिणत द्रव्यमनकी अनन्तपर्यायोको जानता-देखता है।

उपर्युक्त द्रव्यादि सभी वस्तुएँ विपुलमतिमनःपर्यवज्ञानवाला ऋजुमतिवालेकी अपेक्षा कुछ विस्तृत एव विशुद्धरूपसे जानता-देखता है[2]।

---

(१) नन्दी सूत्र-१८ तथा स्था. २ उ. १ सूत्र. ७१

(२) दिगम्बरमतानुसार ऋजुमतिवाला मात्र वर्तमानको एवं विपुलमति-वाला तीनों काल सम्बन्धि मनकी बातको जानता है।

प्रश्न १६— अवधि और मनःपर्यव ये दोनों ही ज्ञान रूपी द्रव्योंको जानते है, फिर इन दोनोमें क्या अन्तर है ?

उत्तर— विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय-इन चारोकी अपेक्षासे काफी अन्तर है[1]।

(१) विशुद्धि— मन.पर्यवज्ञान अवधिज्ञानकी अपेक्षा अपने ज्ञातव्य विषयको बहुत विशदरूपसे जानता है।

(२) क्षेत्र— अवधिज्ञानका क्षेत्र आगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर समूचालोक है और मन पर्यवज्ञानका क्षेत्र मानुषोत्तरपर्वत पर्यन्त ही है।

(३) स्वामी— अवधिज्ञानके स्वामी-अधिकारी चारो गतिवाले हो सकते हैं अर्थात् नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवता इन सभीको अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है, लेकिन मन.पर्यवज्ञान केवल मनुष्यको होता है और मनुष्योमे भी केवल सयति-साधुको होता है। संयतियोमे भी अप्रमत्तसयतिको होता है[2] तथा अप्रमत्तसयतिओमे भी केवल ऋद्धिप्राप्त अर्थात् आमर्षौषधि आदि लब्धियुक्त-सयतिको उत्पन्न होता है।

(४) विषय— अवधिज्ञानका विषय कतिपय पर्यायोयुक्त सम्पूर्ण रूपीद्रव्य है और मन.पर्यवज्ञानका विषय उसका अनन्तवा भाग मात्र है अर्थात् वह मात्र मनोवर्गणाके पुद्गलोको जानता-देखता है।

इसके सिवा अवधिज्ञानके पहले अवधिदर्शन अवश्य होता है, किन्तु मन पर्यवज्ञानके पहले कोई दर्शन नही होता।

प्रश्न १७— अवधिज्ञानसे मन पर्यवज्ञानका महत्त्व अधिक कैसे

---

(१) तत्वार्थसूत्र. अ. १ सूत्र २६ तथा नन्दी. सूत्र १७

(२) मन.पर्यवज्ञानकी उत्पत्ति तो केवल अप्रमत्तगुणस्थानमे ही है, किन्तु स्थिति छट्टेसे बारहवें गुणस्थान तक मानी गई है।

माना गया है ?

उत्तर— एक डाक्टर तो सामान्यरूपसे सभी रोगोका इलाज करता है और दूसरा स्पेशल नेत्रका, दान्तका, कुष्ठका या टी बी का ही इलाज करता है। उक्त दोनो प्रकारके डाक्टरोमे जैसे स्पेशल डाक्टरका महत्त्व अधिक रहता है, उसी प्रकार अवधिज्ञान सामान्यरूपसे सभी रूपी द्रव्योका ज्ञान करता है और मन पर्यवज्ञान मानसिकज्ञानके लिए स्पेशल है अत उसका अधिक महत्त्व रखा गया है।

चौथा पुञ्ज

प्रश्न १— केवलज्ञानका क्या अर्थ है ?

उत्तर— जो त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यो एवं पर्यायोको साक्षात्-हस्तामलकवत् जानता है उसे केवलज्ञान कहते हैं। केवल शब्दका अर्थ एक, शुद्ध, अनन्त या प्रतिपूर्ण है। केवलज्ञान अर्थात् एक-अद्वितीयज्ञान, शुद्धज्ञान, अनन्तज्ञान या प्रतिपूर्णज्ञान। यह ज्ञान अप्रतिपाती है, उत्पन्न होनेके बाद कभी नष्ट नही होता।

प्रश्न २— केवलज्ञान कितने प्रकारका है ?

उत्तर— केवलज्ञानके दो भेद हैं[1] भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धस्थ-केवलज्ञान।

भवस्थकेवलज्ञान— भवका अर्थ संसार है। संसारमे रहे हुए प्राणियोको जो केवलज्ञान होता है उसे भवस्थकेवलज्ञान कहते हैं। यह ज्ञानावरणीयकर्मका क्षय होनेसे उत्पन्न होता है। इसकी उत्पत्ति तेरहवें गुणस्थानमे होती है और स्थिति तेरहवें और चौदहवें—इन दोनो गुण-स्थानोमे होती है।

सिद्धस्थकेवलज्ञान— जब प्राणी आठो कर्मोका नाश करके मोक्ष चले जाते हैं तब वे सिद्ध कहलाने लग जाते हैं। सिद्धोमे जो केवलज्ञान होता है उसे सिद्धस्थकेवलज्ञान कहते हैं। सिद्धोके तीर्थसिद्ध, अतीर्थ-सिद्ध आदि पन्द्रह भेद[2] होनेसे सिद्धस्थ केवलज्ञानके भी पन्द्रह भेद माने

---

(१) नन्दी सू. १९–२०–२१

(२) पन्द्रह भेदोंका विवेचन लोकप्रकाश पुञ्ज– ६ प्रश्न– ६ में विस्तार-युक्त है।

गए हैं ?

प्रश्न ३— केवलज्ञानके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव बतलाइये ?

उत्तर— द्रव्यसे— केवलज्ञानी समस्त द्रव्योंको जानते-देखते हैं।

क्षेत्रसे— लोक-अलोकके सब क्षेत्रको जानते-देखते हैं।

कालसे— सर्वकालको जानते-देखते है।

भावसे— सर्व द्रव्योंकी सभी पर्यायोंको जानते-देखते हैं[1]।

केवलज्ञानियोंके ज्ञानके विषयमे कहा जाता है कि एक बालके अग्रभाग पर आकाशकी असंख्यश्रेणिया-लम्बे तार हैं। एक-एक आकाश-की श्रेणीमे असंख्य-असंख्य प्रतर-मोडलकी तरह पडे हैं। एक-एक प्रतरमे असंख्य-असंख्य गोलक अर्थात् प्रतरके तिरछे (आडे) खण्ड हैं। एक-एक गोलकमे निगोदके असंख्य-असंख्य शरीर हैं। एक-एक शरीरमे अनन्त-अनन्त जीव है। एक-एक जीवके असंख्य-असंख्य प्रदेश हैं। एक-एक प्रदेश पर अनन्त अनन्त कर्मवर्गणा अर्थात् कर्म-पुद्गलोंके अनन्त समूह हैं। एक-एक वर्गणामे अनन्त-अनन्त परमाणु हैं। एक-एक परमाणुकी अनन्त-अनन्त पर्यायें-अवस्थायें हैं और एक-एक पर्याय पर केवलज्ञानियोंका ज्ञान है यानी वे अपने ज्ञानमे प्रत्येक पर्यायको जान-देख सकते है।

प्रश्न ४— हम कैसे जान सकते हैं कि अमुक व्यक्तिके पास केवलज्ञान है ?

उत्तर— सात बातोंसे केवलज्ञानी पहचाने जाते हैं[2]। वे सात बातें ये हैं—(१) केवलज्ञानी जीवहिंसा नहीं करते (२) कभी असत्य भाषण नहीं करते (३) कभी किसी भी प्रकारकी छोटी या बडी चोरी नहीं करते (४) शब्दादि विषयोंके आस्वादक नहीं होते अर्थात् आसक्ति-

(१) नन्दी सूत्र २२
(२) स्था० ७ सूत्र० ५५०

पूर्वक उनका सेवन नही करते (५) वस्त्रादिके द्वारा किए गए अनंत पूजा-सत्कारका कभी अनुमोदन नही करते अर्थात् उसे पाकर हर्षित नही होते। (६) आधाकर्मादिदोषयुक्त वस्तुएँ सावद्य-पापकारी है ऐसी प्ररूपणा करके उनका आसेवन-ग्रहण कभी नही करते। (७) तथा जैसा कहते हैं वैसा ही आचरण करते है। उनकी कथनी-करनीमे बिल्कुल फर्क नही होता। स्खलनामुख्यतया मोहनीयकर्मके उदयमे होती है, केवलज्ञानियोके मोहनीयकर्मका क्षय होगया अत. कभी किसी भी बातमे स्खलना हो ही नहीं सकती।

छद्मस्थ भी सात बातोसे पहचाने जाते हैं— (१) वे जान-अनजानमे जीवहिंसा कर लेते हैं (२) असत्य बोल जाते हैं (३) चोरी कर लेते हैं (४) शब्दादि विषयोंके आस्वादक होते हैं (५) पूजा-सत्कारसे हर्षित होते हैं (६) आधाकर्मादिको सावद्य कहकर भी उसका सेवन कर लेते है (७) और कथनी-करनीमे अन्तर डाल देते हैं कारण, छद्मस्थमुनिके अभी मोहकर्म अवशिष्ट है।

प्रश्न ५— पिछले चारज्ञानवालोंकी अपेक्षा केवलज्ञानी कौन-कौनसी विशेष वस्तुएँ जान-देख सकते है ?

उत्तर— निम्नलिखित सात वस्तुएँ, जिन्हे छद्मस्थ-चारज्ञानवाले पूर्णतया नही जान-देख सकते, उन्हे केवलज्ञानी जान-देख सकते हैं[1]— (१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) शरीररहित-जीव (५) शरीरसे अस्पृष्ट (बिना छूआ) परमाणु-पुद्गल (६) अस्पृष्टशब्द और (७) अस्पृष्टगन्ध।

प्रश्न ६— केवलज्ञानियोकी और क्या क्या विशेषतायें है ?

उत्तर— केवलज्ञानियोके पास दस वस्तुएँ अनुत्तर अर्थात्

(१) स्था. ७ सूत्र ५६७

अद्वितीय-सर्वोत्कृष्ट होती हैं[1] तथा उनमें अठारह दोष नहीं होते।

(१) अनुत्तरज्ञान— ज्ञानावरणीयकर्म सर्वथा नष्ट होनेसे उन्हें अनुत्तर-केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।

(२) अनुत्तरदर्शन— दर्शनावरणीय एवं दर्शनमोहनीयकर्मका सर्वथा नाश होनेसे उन्हें अनुत्तर केवलदर्शन तथा अनुत्तर क्षायकदर्शन-क्षायकसम्यक्त्व प्राप्त हुआ है।

(३) अनुत्तरचारित्र— चारित्रमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तर-यथाख्यातचारित्र मिला है।

(४) अनुत्तरतप— तपोन्तरायकर्मके क्षय होनेसे उन्हें शुक्ल-ध्यानादिरूप अनुत्तरतप प्राप्त हुआ है।

(५) अनुत्तरवीर्य— वीर्यान्तरायकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरवीर्य (शक्ति) मिला है।

(६) अनुत्तरक्षान्ति— क्रोधमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरक्षमा मिली है।

(७) अनुत्तरशुद्धि— लोभमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरमुक्ति-निर्लोभता प्राप्त हुई है।

(८) अनुत्तरआर्जव— मायामोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरआर्जव-सरलता प्राप्त हुई है।

(९) अनुत्तरमार्दव— मानमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरमार्दव-मृदुता, निरभिमानता प्राप्त हुई है।

(१०) अनुत्तरलाघव— चारित्रमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरलाघव-हल्कापन प्राप्त हुआ है, उन पर संसारकी मोह-मायाका बोझ नहीं रहा।

प्रश्न ७— अठारह दोष कौन-कौनसे हैं ?

---

(१) स्था- १० सूत्र- ७६३

पूर्वक उनका सेवन नही करते (५) वस्त्रादिके द्वारा किए गए अपने पूजा-सत्कारका कभी अनुमोदन नही करते अर्थात् उसे पाकर हर्षित नही होते। (६) आधाकर्मादिदोषयुक्त वस्तुएँ सावद्य-पापकारी है ऐसी प्ररूपणा करके उनका आसेवन-ग्रहण कभी नही करते। (७) तथा जैसा कहते है वैसा ही आचरण करते हैं। उनकी कथनी-करनीमे बिल्कुल फर्क नहीं होता। स्खलनामुख्यतया मोहनीयकर्मके उदयमे होती है, केवलज्ञानियोके मोहनीयकर्मका क्षय होगया अत. कभी किसी भी बातमे स्खलना हो ही नहीं सकती।

छद्मस्थ भी सात बातोसे पहचाने जाते है— (१) वे जान-अनजानमे जीवहिंसा कर लेते हैं (२) असत्य बोल जाते हैं (३) चोरी कर लेते हैं (४) शब्दादि विषयोंके आस्वादक होते हैं (५) पूजा-सत्कारसे हर्षित होते हैं (६) आधाकर्मादिको सावद्य कहकर भी उसका सेवन कर लेते हैं (७) और कथनी-करनीमे अन्तर डाल देते हैं कारण, छद्मस्थमुनिके अभी मोहकर्म अवशिष्ट है।

प्रश्न ५— पिछले चारज्ञानवालोंकी अपेक्षा केवलज्ञानी कौन-कौनसी विशेष वस्तुएँ जान-देख सकते है ?

उत्तर— निम्नलिखित सात वस्तुएँ, जिन्हे छद्मस्थ-चारज्ञानवाले पूर्णतया नही जान-देख सकते, उन्हे केवलज्ञानी जान-देख सकते हैं[1]— (१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) शरीररहित-जीव (५) शरीरसे अस्पृष्ट (बिना छूआ) परमाणु-पुद्गल (६) अस्पृष्टशब्द और (७) अस्पृष्टगन्ध।

प्रश्न ६— केवलज्ञानियोंकी और क्या क्या विशेषतायें है ?

उत्तर— केवलज्ञानियोके पास दस वस्तुएँ अनुत्तर अर्थात्

---

(१) स्था. ७ सूत्र ५६७

अद्वितीय-सर्वोत्कृष्ट होती हैं[२] तथा उनमे अठारह दोष नही होते।

(१) अनुत्तरज्ञान— ज्ञानावरणीयकर्म सर्वथा नष्ट होनेसे उन्हें अनुत्तर-केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।

(२) अनुत्तरदर्शन— दर्शनावरणीय एवं दर्शनमोहनीयकर्मका सर्वथा नाश होनेसे उन्हें अनुत्तर केवलदर्शन तथा अनुत्तर क्षायकदर्शन-क्षायकसम्यक्त्व प्राप्त हुआ है।

(३) अनुत्तरचारित्र— चारित्रमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तर-यथाख्यातचारित्र मिला है।

(४) अनुत्तरतप— तपोन्तरायकर्मके क्षय होनेसे उन्हें शुक्ल-ध्यानादिरूप अनुत्तरतप प्राप्त हुआ है।

(५) अनुत्तरवीर्य— वीर्यान्तरायकर्मके क्षय होनेसे उन्हे अनुत्तरवीर्य (शक्ति) मिला है।

(६) अनुत्तरक्षान्ति— क्रोधमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हे अनुत्तरक्षमा मिली है।

(७) अनुत्तरमुक्ति— लोभमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरमुक्ति-निर्लोभता प्राप्त हुई है।

(८) अनुत्तरआर्जव— मायामोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरआर्जव-सरलता प्राप्त हुई है।

(९) अनुत्तरमार्दव— मानमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हें अनुत्तरमार्दव-मृदुता, निरभिमानता प्राप्त हुई है।

(१०) अनुत्तरलाघव— चारित्रमोहनीयकर्मके क्षय होनेसे उन्हे अनुत्तरलाघव-हल्कापन प्राप्त हुआ है, उन पर संसारकी मोह-मायाका बोझा नही रहा।

प्रश्न ७— अट्ठारह दोष कौन-कौनसे है?

---

(२) स्था- १० सूत्र- ७६३

उत्तर— केवलज्ञानियोमें नही होनेवाले अठारह दोष इस प्रकार हैं[1]।

(१) दानान्तराय— दान नही दिया जा सकना।
(२) लाभान्तराय— इच्छित वस्तुका लाभ न हो सकना।
(३) भोगान्तराय— प्राप्त वस्तुको न भोग सकना।
(४) उपभोगान्तराय— प्राप्त वस्तुका उपभोग न कर सकना।
(५) वीर्यान्तराय— समर्थ होते हुए भी इच्छित कार्य न कर सकना।
(६) मिथ्यात्व— विपरीत श्रद्धा।
(७) अज्ञान— मिथ्यात्वयुक्तज्ञान तथा अजानपणा।
(८) अविरति— त्याग करनेकी भावना न होना।
(९) काम— भोगकी इच्छा।
(१०) हास्य— हंसना।
(११) रति— असयमके कार्योमे आनन्द मानना।
(१२) अरति— सयमके कार्योमे अप्रसन्न रहना।
(१३) शोक— चिन्ता, फिक्र एवं आक्रन्दन आदि करना।
(१४) भय— डरना।
(१५) जुगुप्सा— घृणा करना।
(१६) राग— इष्टवस्तुओ पर प्रेम-मोह करना।
(१७) द्वेष— अनिष्टवस्तुओ पर द्वेष-ईर्ष्या आदि करना।
(१८) निद्रा— नींद लेना।

केवलज्ञान होने पर व्यक्तिमे उपर्युक्त अठारह दोष-आत्माको विकारी बनानेवाले दुर्गुण नही ठहर सकते।

---

(१) प्रवचनसार- द्वार ४१ गाथा ४५१-५२ तथा सत्तरिसयठाणा १ वृत्ति द्वार- ९६ गाथा- १९२-१९३

प्रश्न ८— क्या केवलज्ञानियोंके पैरोंसे चलते समय जीव मर सकते हैं ?

उत्तर— हा अण्डे आदि जीव क्वचित् मर जाते हैं, लेकिन उन्हे उनकी हिंसाका पाप नही लगता । क्योंकि हिंसा आदिका पाप मोह-कर्मके उदयसे लगता है और केवलज्ञानियोके मोहकर्म समूल नष्ट हो गया ।

प्रश्न ९— केवलियोंके पास तो केवलज्ञान है फिर वे अपने पैरोको क्यो नहीं रोक लेते ?

उत्तर— मरनेवाले जीवोंका मरण उन्हींके पैरोंसे होगा ऐसा पहलेसे निश्चित है अत अवश्यम्भावी-भावको केवलज्ञानी नही टाल सकते एव अपने पैरोको नही रोक सकते । पैरोको नही रोक सकनेका दूसरा कारण भोगोकी चञ्चलता है । भगवती- श. ५ उ ४ सू १४२ मे कहा है कि केवली अभी जिस आकाशखण्डमे हाथ-पैर आदि रखते हैं, समयान्तर उन्हे उठाकर उसी आकाशखण्डमे दुबारा नही रख सकते। काययोगकी चञ्चलताके कारण असख्य आकाशप्रदेशोका अन्तर रह जाता है।

प्रश्न १०— क्या केवलज्ञानियोंको कोई कष्ट भी दे सकता है ?

उत्तर— हा ! केवलज्ञानियोको दुष्ट पुरुष गाली दे सकता है, उनकी हसी-मजाक कर सकता है, भर्त्सना कर सकता है, उन्हे बाध सकता है, उनके हाथ-पैर आदिका छेदन-भेदन कर सकता है, उनके वस्त्रादि उपकरणोको नष्ट भ्रष्ट कर सकता है एव चुरा सकता है और तो क्या भगवान् महावीरको गोशालककी तरह उन्हें मरणान्त-कष्ट भी दे सकता है । क्योंकि अभी उनके असातवेदनीयकर्म नष्ट नही हुआ है ।

उपर्युक्त विधिसे कष्ट देने पर भी केवलज्ञानी बिल्कुल खिन्न नही होते । निम्नलिखित पाच बातोका स्मरण करते हुए वे उन कष्टोको

समभावपूर्वक सहन करते हैं। पाच बातें इस प्रकार हैं[1]—

(१) पुत्रशोक आदिके दुःखमे इस पुरुषका चित्त खिन्न एव विक्षिप्त है, इसलिए यह उपसर्ग कर रहा है।

(२) पुत्रजन्म आदिके हर्षसे यह पुरुष उन्मत्त हो रहा है, इसलिए उपसर्ग दे रहा है।

(३) इसके शरीरमें कोई देवता घुसा होनेसे यह पुरुष पराधीन है, इसलिए मुझे कष्ट दे रहा है।

(४) मेरे इसी भवमे भोगे जानेवाले असातवेदनीयकर्म उदयमें आए हैं, इसी कारण यह मुझे दु:खित कर रहा है।

(५) मुझे शान्तिपूर्वक कष्ट सहन करता देखकर दूसरे भी मेरा अनुसरण करेंगे अर्थात् कष्टोको समभावसे सहेगे।

प्रश्न ११— असोच्चा-केवली कौन होते हैं?

उत्तर— जिन व्यक्तियोने साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका आदि किसीके पास कभी केवलिभाषित सच्चा धर्म नही सुना हो एव स्वबुद्धिसे उपशान्त बनकर घोर तपस्या द्वारा चार कर्मोका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया हो, उन्हे असोच्चाकेवली-अश्रुतकेवली कहते है। उक्त व्यक्तियोको ध्यान एव अज्ञानतपस्या करते-करते विभङ्गज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे वे उत्कृष्टस्थितिमे असंख्यातहजारयोजनक्षेत्रको जानने-देखने लगते है और जीव-अजीवको यथार्थरूपसे समझने लगते हैं। उन्हें आरम्भी, परिग्रही एवं संक्लिश्यमान-पाषण्डियोका तथा विशुद्ध-जीवोका यथार्थज्ञान हो जाता है। यथार्थज्ञान होते ही मिथ्यात्वकी पर्यायें क्षीण होनेसे वे सम्यक्त्वी एव सयमी बनकर जैनमुनिका वेष धारण करते हैं और उनका विभङ्गज्ञान अवधिज्ञानके रूपमे बदल जाता है। क्रमश: आगे बढते हुए वे चारो कर्मोको नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेते

---

(१) स्था० ५। उ. १। सू०— ४०६

हैं। ये असोच्चाकेवली जैनमुनिका वेष धारण करनेके पूर्व धर्मका उपदेश-व्याख्यान नही करते। केवल प्रश्नका उत्तर देते है। स्वयं किसीको दीक्षा नही देते, किन्तु दूसरोंके पास दीक्षित होनेकी प्रेरणा देते हैं। असोच्चा-केवली एक समयमें उत्कृष्ट दस हो सकते हैं[1]।

प्रश्न १२— केवलि-समुद्घातका क्या अर्थ है?

उत्तर— वेदनीयकर्मकी स्थितिको आयुष्यकर्मकी स्थितिके तुल्य करनेके लिए जो एक स्वाभाविक क्रिया होती है उसे केवलिसमुद्घात कहते हैं।

जिन केवलज्ञानियोंके आयुष्यकर्मकी स्थिति कम रह जाती है और वेदनीयकर्मकी स्थिति अधिक रह जाती है उन्हीके यह समुद्घात होता है। इसमे आठ समय लगते हैं[2]।

पहले समय केवलीके आत्मप्रदेश दण्डके आकार बनते हैं। वह दण्ड मोटा तो अपने शरीर जितना एव लम्बा लोक पर्यन्त चौदहरज्जूका होता है। दूसरे समयमे वह दण्ड पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण लोक पर्यन्त फैलकर कपाटका रूप लेता है। तीसरे समयमे वह कपाट उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिममे फैलकर मंथानीके तुल्य बनता है। ऐसा होनेसे लोकका अधिक भाग केवलियोके आत्मप्रदेशोसे व्याप्त हो जाता है, फिर भी मथानीकी आकृति होनेसे आकाशके कुछ अन्तराल-प्रदेश खाली रह जाते हैं अत. चौथे समयमे उन खाली रहे हुए सब आकाशप्रदेशोपर केव-लियोके आत्मप्रदेश पहुँच जाते है। उस समय प्रत्येक लोकाकाशके प्रदेशो पर केवलियोके आत्मप्रदेश होते हैं एव उनकी आत्मा सम्पूर्ण लोकमे व्याप्त हो जाती है। क्योंकि एक जीवके असंख्य प्रदेश और लोकाकाशके असख्यप्रदेश बराबर हैं।

---

(१) भ० श. ६ उ— ३१

(२) प्रज्ञापना पद— ३६ सूत्र ७१० से ७१२

इस क्रियाके वाद आत्मप्रदेशोका वापिस संकोच होने लगता है। जैसे-पाचवें समयमे अन्तराल-प्रदेश खाली होकर पुन मथानी वन जाती है। छठे समय कपाट वन जाता है। सातवें समय दण्ड वन जाता है एवं आठवें समयमे केवली अपने मूलरूपमे आ जाते हैं।

यह समुद्घातकी क्रिया स्वाभाविक होती है, क्योंकि व्यक्तिका किया हुआ कोई भी काम असख्य समयोके विना नही हो सकता, जवकि इसमे मात्र आठ समय लगते हैं। इस समुद्घातकी क्रियासे वेदनीयकर्मकी स्थिति, जो आयुष्यकर्मसे अधिक है उसकी निर्जरा हो जाती है। फिर वे केवली अन्तमुर्हूर्तके अन्दर ही (अपने लाए हुए पीठ-फलक-शय्या-सथारा आदि वापिस सौंपकर) मोक्ष चले जाते हैं।

इस समुद्घातकी क्रियामे मन-वचनके योगोकी प्रवृत्ति नही होती, केवल काययोग होता है। उसमे भी पहले-आठवें समय औदारिककाययोग, दूसरे-छठे-सातवें समय औदारिकमिश्रकाययोग एवं तीसरे-चौथे-पाँचवें समय कार्मणकाययोग होता है। कार्मणकाययोगके समय आत्मा अनाहारक होती है। केवलिसमुद्घात सामान्यकेवलियोंके ही होता है, लेकिन तीर्थंकरोंके नही होता।

प्रश्न १३— जगत्में केवलज्ञानी कितने होते हैं ?

उत्तर— केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी अपेक्षासे तो केवलज्ञानी कभी होते हैं और कभी नही भी होते। (केवलज्ञानकी उत्पत्तिका उत्कृष्ट छ. मासका विरह पड़ सकता है अर्थात् कभी-कभी छः महीनो तक किसी नए व्यक्तिको केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता) यदि होते हैं तो जघन्य एक-दो-तीन और उत्कृष्ट एक सौ आठ हो जाते हैं यानी एक-सौ आठ व्यक्तियोको एक साथ केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तथा विद्यमानताकी अपेक्षासे केवलज्ञानी जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व-करोड होते हैं यानी कमसे कम दो करोड तो हरवक्त रहते ही है एवं अधिक होते हैं तव नव

करोड तक हो जाते हैं[1]।

प्रश्न १४— केवली कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर— केवली तीन प्रकारके माने गए हैं[2]— अवधिज्ञानी केवली, मन.पर्यवज्ञानीकेवली, और केवलज्ञानीकेवली। केवलज्ञानी तो केवलज्ञानयुक्त होनेसे केवली है ही, किन्तु अवधिज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी भी केवलज्ञानियोंके समान आत्मप्रत्यक्ष-ज्ञानयुक्त होनेसे केवली कहे जाते हैं तथा परमअवधिज्ञानी और विपुलमति-मन पर्यवज्ञानी निश्चितरूपसे केवली बनते ही हैं इसलिए उपचारसे इन्हे केवली कहा गया है।

प्रश्न १५— पाँच ज्ञानोंमें प्रत्यक्ष कितने हैं और परोक्ष कितने है ?

उत्तर— अवधिज्ञान, मन.पर्यवज्ञान और केवलज्ञान-ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं तथा मतिज्ञान-श्रुतज्ञान परोक्ष हैं[3] प्रत्यक्ष— परोक्षका अर्थ इस प्रकार है—

प्रत्यक्ष— जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायताके विना सीधा आत्मासे सम्बन्ध करता हुआ उत्पन्न होता है उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं। यहाँ अक्ष नाम आत्माका है। अवधि, मन पर्यव और केवल-इन तीनो ज्ञानोकी उत्पत्तिमे मात्र आत्माका ही सम्बन्ध रहता है अत ये प्रत्यक्ष हैं।

परोक्ष— जो ज्ञान इन्द्रिय और मनके सहारेसे उत्पन्न होता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। परोक्षज्ञान अर्थात् आत्मासे परे-दूर रहकर होनेवाला ज्ञान। मति-श्रुतज्ञानमे इन्द्रिय एवं मनकी सहायता लेनी ही पडती है अत ये दोनो ज्ञान परोक्ष है। यह व्याख्या निश्चयदृष्टिसे की

---

(१) भ श २५ उ. ६ सूत्र ७८४
(२) स्था- ३ उ- ४ सूत्र- २२०
(३) नन्दी सू २

गई है। व्यावहारिकदृष्टिसे तो इन्हे इन्द्रियप्रत्यक्ष भी कहा है। इन्द्रियप्रत्यक्ष अर्थात् इन्द्रियोसे सम्बन्ध करके उत्पन्न होनेवाले ज्ञान।

प्रश्न १६— पांच ज्ञानोमे बोलनेवाले कितने है और नहीं बोलनेवाले कितने हैं ?

उत्तर— चार ज्ञान तो मूक हैं, मात्र एक श्रुतज्ञान बोलनेवाला है[1]। क्योकि चारो ही ज्ञान वस्तुको केवल जान सकते हैं, पर कह नही सकते। कहते समय उन्हे अक्षरादि-द्रव्यश्रुतका सहारा लेना ही पडता है। पढना, लिखना, बोलना, सुनना, समझना आदि दुनियाके सारे व्यवहार श्रुतज्ञानसे ही चलते हैं। सारा सरस्वतीका भण्डार (जिसमे काव्य, कोष, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, न्याय, तर्क आदिके अनेक विचित्र-ग्रन्थ है) श्रुतज्ञानमय ही हैं। इसलिए श्रुतज्ञान व्यावहारिक एव शेष चार अव्यावहारिक भी माने गए हैं।

प्रश्न १७— पांच ज्ञानोमें प्रयत्न करके कितने ज्ञान जानते हैं एवं बिना प्रयत्न किए कितने जानते हैं ?

उत्तर— मति–श्रुत–अवधि–मन पर्यव ये चार ज्ञान तो ज्ञातव्य वस्तुको प्रयत्न करने पर अर्थात् उपयोग लगाने पर ही जान सकते हैं, लेकिन केवलज्ञानमे प्रयत्नकी आवश्यकता नही पडती, वह सहजरूपसे ही जानता–देखता रहता है।

प्रश्न १८— पांच ज्ञान कौन-कौनसे भाव एवं कौन-कौनसी आत्माएँ हैं ?

उत्तर— सभी ज्ञानोमे आत्मा तो एक ज्ञानात्मा है और भाव; चार ज्ञान क्षयोपशमभाव हैं, कारण ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमसे प्रकट होते हैं तथा केवलज्ञान ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है अत क्षायकभाव है।

---

(१) अनुयोगद्वार सूत्र—१

पांचवाँ पुञ्ज

प्रश्न १— अज्ञानका क्या अर्थ है ?

उत्तर— अज्ञानके दो अर्थ हैं। एक तो नही जाननेका नाम अज्ञान है जो ज्ञानावरणीयकर्मके उदयसे उत्पन्न होता है एवं घोर अन्धकाररूप है। दूसरा मिथ्यात्वि-व्यक्ति जो जानता है उसका नाम अज्ञान है। वह ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमसे प्रकट होता है एवं प्रकाश-रूप है।

प्रश्न २— अज्ञान ज्ञानावरणीयकर्मका क्षयोपशम एवं प्रकाश-रूप कैसे ?

उत्तर— जैसे सघन बादलोंसे आच्छादित होने पर भी चन्द्र-सूर्य की कुछ न कुछ प्रभा अवश्य रहती है। इसी तरह घोर-मिथ्यात्वमोहका उदय होने पर भी तथा अनन्तानन्त ज्ञानावरण-दर्शनावरणकर्मके परमाणुओंसे आत्मा आवृत्त होने पर भी उसमे अक्षरका अनन्तवा भाग तो अनावृत खुला रहता ही है अर्थात् ज्ञानकी सर्वजघन्यमात्रा विद्यमान रहती ही है। यदि वह भी आवृत हो जाय तो फिर जीव चैतन्यरहित होकर अजीव बन जाय[1]। यहा अक्षरका अर्थ मति-श्रुतअज्ञानका अंश समझना चाहिए। उपर्युक्त विवेचनका सार यह है कि अक्षरके अनन्तवें भाग जितना प्रकाश प्रत्येक आत्मामे रहता है। फिर वह आत्मा चाहे अभव्यकी भी क्यो न हो। उस प्रकाशका नाम ही अज्ञान है, इसीलिए उसे ज्ञानावरणीयकर्मका क्षयोपशम एवं प्रकाशरूप कहा है।

---

(१) नन्दी सूत्र ४२ के आधारसे

प्रश्न ३— ज्ञान-अज्ञानमें क्या अन्तर है ?

उत्तर— अन्तर इतना ही है कि सम्यग्दृष्टिका ज्ञान ज्ञान कहलाता है और मिथ्यादृष्टिका ज्ञान अज्ञान कहलाता है[1]। जैसे– तालावमे से दो आदमी पानी भरते हैं। एक साफ-सुथरे पीपेमे भरता है और दूसरा कूडा-कर्कट फेंकनेके पीपेमे। दोनो पीपोका पानी समान होने पर भी साफ पीपेका पानी पवित्र एव गन्दे पीपेका पानी अपवित्र कहा जाता है। इसी तरह उपर्युक्तज्ञान और अज्ञान दोनो ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम हैं, फिर भी पात्रकी भिन्नताके कारण एक ज्ञान और दूसरा अज्ञान कहलाता है।

प्रश्न ४— अज्ञान कितने हैं ?

उत्तर— तीन हैं। मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभङ्गज्ञान[2]।

मतिअज्ञान— मिथ्यादृष्टियोको इन्द्रियो और मनकी सहायतासे जो बुद्धि- सम्वन्धीज्ञान उत्पन्न होता है वह मतिज्ञान है। इसके भी मतिज्ञानकी तरह अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ऐसे चार भेद हैं।

श्रुतअज्ञान— द्रव्यश्रुतके सहारेसे मतिअज्ञान जब दूसरोको समझाने लायक हो जाता है तब वही श्रुतअज्ञान कहलाने लगता है। इसका विवेचन श्रुतज्ञानके समान ही है। इसमे सम्यक्श्रुतको न लेकर मिथ्या-दृष्टियो द्वारा रचित भारत-रामायण आदि लौकिकशास्त्रोका ग्रहण किया गया है।

विभङ्गज्ञान— सर्वज्ञभाषिततत्त्वोके प्रति विरुद्ध श्रद्धा रखनेवाले मिथ्यादृष्टियोका अवधिज्ञान विभङ्गज्ञान कहलाता है। यह नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देव इन सभीमे हो सकता है। मनुष्योंमे अज्ञान-तपस्या करनेवाले सन्यासियोको जब यह ज्ञान उत्पन्न होता है तब कई

---

(१) नन्दी सूत्र २५

(२) भग- श- ८. उ- २ सूत्र ३१७

शिवराजर्षि की तरह सात द्वीप सात समुद्र देखते हैं[1] एवं कई पुद्गल परिव्राजक की तरह ब्रह्मस्वर्ग तक ऊर्ध्वलोकको भी देख लेते हैं[2]। वे जो कुछ अपूर्ण द्रव्य-क्षेत्र आदि देखते हैं, उसीकी प्ररूपणा करते हुए कहने लग जाते हैं कि हमे अतिशय-विशेषज्ञान प्राप्त हुआ है उससे हमने जो कुछ देखा है, ससार एव ससारकी वस्तुएँ उसी रूपमे हैं। उमसे न्यूनाधिक बतानेवाले सब झूठे हैं। सबको झूठा कहनेसे वे स्वयं झूठे बन जाते हैं, कारण उनका ज्ञान अधूरा होता है।

प्रश्न ५— विभङ्गज्ञानी अपने ज्ञानसे कितना क्षेत्र देखते हैं?

उत्तर— पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणमे सीमित-क्षेत्र देखते हैं। अधोलोकमे बिल्कुल नही देखते और ऊर्ध्वलोकमे प्राय प्रथम स्वर्ग तक देखते हैं।

प्रश्न ६— विभङ्गज्ञानके कितने भेद हैं?

उत्तर— विभङ्गज्ञान सात प्रकारका माना गया है[3]—

(१) एक दिशाको लोक माननेवाला विभङ्गज्ञान— इसका स्वामी पूर्वादि दिशाओमे से ज्ञान द्वारा किसी एक दिशाको देखकर दुराग्रह-वश कहने लगता है कि लोक एक ही दिशामे है। पाचो दिशाओमे कहनेवाले झूठे हैं।

(२) पांच दिशाओंमें लोक माननेवाला विभङ्गज्ञान— इसका स्वामी ज्ञानसे पूर्वादि चार एव एक ऊर्ध्व ऐसे पाच दिशाओको देखकर प्ररूपणा करने लगता है कि पाच दिशाओमे लोक है, एक दिशामें कहनेवाले झूठे हैं।

(३) क्रियाको कर्म समझनेवाला विभङ्गज्ञान— इसका स्वामी

(१) भग. श- ११ उ- ९

(२) भग. श- ११ उ- १२

(३) स्था- ७ उ. ३ सू० ५४२

अपने ज्ञानसे जीवोकी हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह सञ्चय एव रात्रि-भोजन आदि क्रियाएँ करते देखकर मान बैठता है कि क्रिया ही कर्म है (ज्ञानकी अल्पतासे वह कर्मपुद्गलोको नहीं देख सकता) अत: क्रियाके हेतुभूत कर्मोंकी पृथक् प्ररूपणा करनेवाले सब मिथ्यावादी है।

(४) जीवको पुद्गलरूप माननेवाला विभङ्गज्ञान— इसका स्वामी भवनपति आदि देवोको बाह्य एवं आभ्यन्तर पुद्गलोको लेकर विकुर्वणा करते देखकर कहने लगता है कि पुद्गलोसे बना हुआ यह शरीर ही जीव है अतः जीवको पुद्गलमय नही माननेवाले असत्यवादी हैं।

(५) जीवको एकान्त अपुद्गलरूप समझनेवाला विभङ्गज्ञान— इसका स्वामी देवोको बाह्य पुद्गल लिए बिना ही देवजन्म-सम्बन्धी स्वाभाविक वैक्रियशक्ति द्वारा नाना प्रकारकी क्रियाएँ करते देखकर समझने लगता है कि जीव पुद्गलरूप है ही नही, इसे पुद्गलरूप माननेवाले मिथ्यावादी हैं (वास्तवमें शरीरसहित जीव पुद्गलमय है और शरीररहितजीव अपुद्गलमय है)

(६) जीवको रूपी माननेवाला विभङ्गज्ञान— इसका स्वामी सभी जीवोको (शरीरसहित होनेके कारण) रूपवान देखकर मानने लगता है कि जीव एकान्त रूपी है। इसे अरूपी कहनेवाले झूठे हैं।

(७) पुद्गलोंको जीव माननेवाला विभङ्गज्ञान— इसका स्वामी छोटे-छोटे पुद्गलोके स्कन्धोको हवासे चलते-फिरते देखकर कहने लगता है कि ये हवामे उडने-फिरनेवाले सब पुद्गल-स्कन्ध जीव ही है। वायुको जीव एव इन्हे अजीव कहनेवाले मिथ्याभाषी हैं।

उपर्युक्त विभङ्गज्ञानी जो कुछ सत्य देखते हैं वह तो ठीक ही है, किन्तु मिथ्यात्वमोहके उदयसे जो उल्टा अर्थ लगा लेते है और कहते हैं कि हमने अतिशय ज्ञानसे जो देखा है, वही सब कुछ है, यह उनका दुराग्रह एवं मिथ्यात्व है।

इनमेसे अधिकाश तो अपना दुराग्रह नही छोडते, किन्तु समझकर कई शिवराजर्षि एव पुद्गलपरिव्राजक की (ये दोनों अपना दुराग्रह छोड़कर भगवान् महावीरके पास साधु बन गए थे) तरह सच्चे साधु भी बन जाते हैं तथा कई विभङ्गज्ञान द्वारा जीव-अजीव आदि तत्त्वोको जानकर सम्यक्त्वी एव साधु होकर केवलज्ञान भी प्राप्त कर लेते हैं। यह वर्णन पीछे असोच्चाकेवलीके प्रश्नमे आचुका है[1]।

प्रश्न ७— दर्शनका क्या अर्थ है ?

उत्तर— दर्शनावरणीयकर्मके क्षय व क्षयोपशमसे जो सामान्य अभेदरूपज्ञान होता है उसका नाम दर्शन है। दर्शन यानी सामान्यज्ञान-अभेदरूपज्ञान।

प्रश्न ८— सामान्य-विशेष किसे कहते हैं ?

उत्तर— वस्तुके जिस धर्मके कारण बहुतसे पदार्थ एक ही सरीखे प्रतीत हो तथा एक ही शब्दमे कहे जायँ, उस धर्मको सामान्य कहते है और जिस धर्मके कारण सजातीय या विजातीय पदार्थोंसे भिन्नताका ज्ञान हो उसे विशेष कहते हैं।

जैसे-नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य एव देवता जीवरूपसे सभी समान हैं और एक ही जीव शब्दके कहनेमे इन सबका ग्रहण हो जाता है, इसलिए इनमे जीवत्व सामान्य है और यही जीवत्व अपने आपको (जीवद्रव्यको) धर्म-अधर्म आदि दूसरे द्रव्योसे भिन्न-अलग करता है अत विशेष भी है।

घट शब्दका घटत्व सभी घटोमे एकताका बोध कराता है अत. वह सामान्य है और स्वर्णघट मे रहा हुआ वही घटशब्द सजातीय-अपने सदृश ताम्रादिमय दूसरे घटोसे तथा विजातीय अपनी जातिसे भिन्न पट-लकुट-शकटादि पदार्थोंसे स्वयको अलग करता है अत. विशेष भी है। ऐसे ही

---

(१) पुञ्ज ४ प्रश्न- ११

गो शब्दका गोत्व सभी गौओंकी एकताका ज्ञान कराता है इसलिए सामान्य है और चितकबरी गाय मे रहा हुआ यही गोशब्द सजातीय दूसरी लाल-पीली आदि गौओंमे तथा विजातीय अश्व-ऊँट-वृषभ आदिसे अपनी भिन्नता दिखलाता है इसलिए विशेष भी है[१]।

वास्तवमे सभी धर्म सामान्य और विशेष कहे जा सकते हैं। अपनेसे अधिक पदार्थोंमे रहनेवाले धर्मकी अपेक्षासे जो धर्म विशेष हैं, वे ही धर्म अपनेसे न्यून वस्तुओंमे रहनेवाले धर्मोंकी अपेक्षासे सामान्य भी हैं। तत्त्व यह है कि प्रत्येक सामान्यमे विशेष एवं प्रत्येक विशेषमे सामान्य विद्यमान रहता है। हा! तो जो ज्ञान सामान्यकी अपेक्षासे होता है उसे दर्शन कहते हैं और जो विशेषकी अपेक्षाको लक्ष्य करके होता है उसे ज्ञान कहते हैं। जो प्राचीन प्रणालिके अनुसार यह कहा जाता है कि जीव ज्ञान से जानता है और दर्शनसे देखता है। यहा जाननेका अर्थ विशेषरूपसे जानना है और देखनेका अर्थ सामान्यरूपसे जानना है।

अपेक्षाभेदसे दर्शन ज्ञान एवं ज्ञान दर्शन कहलाने लगता है। जैसे-एक धर्माचार्यका व्याख्यान हो रहा है। हजारो साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकायें उसे सुन रहे हैं। अचानक बाहरसे एक व्यक्ति आता है और देखकर व्याख्यानमें लोग बैठे है ऐसे सामान्यरूपसे सोचता है, यह दर्शन हुआ। दूसरे ही क्षण ये पुरुष बैठे हैं और ये स्त्रियाँ बैठी है ऐसे भेदरूपसे विचार करता है, यह ज्ञान हो गया। फिर ये साधु एवं ये श्रावक बैठे हैं, साधुओंमें ये सामान्य साधु एवं ये विशिष्टसाधु हैं। विशिष्ट साधुओंमें भी ये आचार्यजी हैं और ये उपाध्याय-गणी-गणावच्छेदक आदि हैं ऐसे भेदरूप ज्ञानमें विशेष भेद करता ही जाता है।

सार यह है कि जहा भेदमे विशेषभेद कर लिया जाता है, वहा

(१) स्याद्वादमञ्जरी कारिका ४ तथा प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार परिच्छेद ५ सूत्र १ के आधारसे

उस विशेष भेदरूप ज्ञानकी अपेक्षासे पिछला भेदरूप ज्ञान भी अभेदरूप बन जाता है एव दर्शन कहलाने लगता है। इसीलिए कहा गया है कि अपेक्षा--भेदसे जो ज्ञान है वह दर्शन बन जाता है और जो दर्शन है वह ज्ञान बन जाता है। वस्तुत: पूर्ववर्ती-अवस्था दर्शन है एवं उत्तरवर्ती-अवस्था ज्ञान है, अस्तु।

प्रश्न ६— दर्शनके कितने प्रकार हैं?

उत्तर— सामान्यज्ञानरूप-दर्शन चार प्रकारका होता है[1]—(१) चक्षुदर्शन (२) अचक्षुदर्शन (३) अवधिदर्शन (४) केवलदर्शन।

(१) चक्षुदर्शन— चक्षुरिन्द्रियकी सहायतासे अर्थात् आँखोंसे देखने पर पदार्थोंका जो सामान्यज्ञान होता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

(२) अचक्षुदर्शन— चार इन्द्रिया और मनकी सहायतासे अर्थात् कानोसे सुनकर, नाकसे सू घकर, जीभसे चखकर, त्वचासे छूकर और मनसे सोचकर पदार्थोंका जो सामान्यज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। यह दर्शन मति-श्रुतज्ञान एवं मति-श्रुत अज्ञानसे पहले होता है।

यद्यपि चक्षुदर्शनकी तरह श्रोत्रदर्शन, घ्राणदर्शन आदि भी कहना चाहिए था, किन्तु इन्द्रिया प्राप्यकारी-अप्राप्यकारी दो ही प्रकारकी होनेसे दर्शनके भी दो भाग कर दिए– अप्राप्यकारीचक्षुरिन्द्रियका चक्षु-दर्शन एव प्राप्यकारी-श्रोत्रादिइन्द्रियोका अचक्षुदर्शन। मन यद्यपि अप्राप्यकारी है फिर भी प्राप्यकारी इन्द्रिया चार हैं एव यह उनका भी अनुसरण करता है अतः इसका अचक्षुदर्शन ही मान लिया गया[2]।

(३) अवधिदर्शन— इन्द्रिय और मनकी सहायताके विना मात्र आत्माकी शक्तिसे मर्यादापूर्वक जो रूपी-पदार्थोको सामान्यरूपसे जानता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं। यह अवधिज्ञान एव विभङ्गज्ञानसे पहले

---

(१) प्रज्ञापनापद– २६ सू० ६४८ के आधारसे

(२) भग– श– १ उ– ३ टीका के आधारसे

अवश्य होता है।

(४) केवलदर्शन— जो त्रिकालवर्ती सभी द्रव्यो और सभी पर्यायोको सामान्यरूपसे जानता है उसे केवलदर्शन कहते है।

प्रश्न १०— मनःपर्यवज्ञानका दर्शन कौन-सा है?

उत्तर— मन.पर्यवज्ञान ज्ञानावरणीयकर्मके विशिष्ट क्षयोपशममे उत्पन्न होनेके कारण मनोद्रव्यको विशेषरूपसे ही जानता है, किन्तु सामान्यरूपसे ग्रहण नही करता अत इसका दर्शन नही होता।

प्रश्न ११— यदि मनःपर्यवज्ञानका दर्शन नहीं होता तो नन्दी सूत्र १८ मे मनःपर्यवज्ञानी जानता-देखता है ऐसे दो पाठ क्यो कहे, सिर्फ जानता है इतना ही कहना चाहिए था?

उत्तर— नन्दीकी टीका एवं चूर्णिमे इसका समाधान इस प्रकार किया है कि मन.पर्यवज्ञानी मनमे सोचे हुए घटादिपदार्थोको साक्षात् नही जानता, किन्तु द्रव्य मनके पुद्गलोको प्रत्यक्ष देखकर उनके सहारेसे अनुमान द्वारा जानता है एवं उस समय मनका कारणभूत अचक्षुदर्शन अवश्य होता है। सम्भवत इसीको लक्ष्य करके सूत्रकारने दर्शनका द्योतक देखता है ऐसा पाठ कहा है।

नन्दी-टीकाकारने दूसरी तरह यह भी समाधान किया है कि मनःपर्यवज्ञानके ऋजुमति-विपुलमति दो भेद हैं। ऋजुमतिवाला मनो-द्रव्यको सामान्यरूपसे जानता है और विपुलमतिवाला विशेषरूपसे जानता है। संभव है सामान्यरूपसे जाननेकी अपेक्षासे देखता है ऐसे कह दिया हो, किन्तु शास्त्रोमे मन.पर्यवज्ञानके दर्शनका कही उल्लेख नही मिलता।

प्रश्न १२— उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर— ज्ञान-दर्शनात्मक चेतनाशक्तिके व्यापारको उपयोग कहते हैं[1] अर्थात् जिस चेतनाशक्तिके द्वारा आत्मा सामान्य या विशेषरूप से वस्तुका ज्ञान करती है, उस ज्ञान करने रूप व्यापार- क्रियाका नाम

(१) जैनसिद्धान्तदीपिका २। २-३

उपयोग है। वह दो प्रकारका है— साकारोपयोग और अनाकारोपयोग।

साकारोपयोग— जिसके द्वारा पदार्थोंके आकार–विशेषधर्मोंका अर्थात् जाति, गुण, क्रिया आदिका ज्ञान हो, वह साकारोपयोग है। साकारोपयोग जीव-अजीव आदि पदार्थोंको पर्यायसहित जानता है। इसका दूसरा नाम ज्ञानोपयोग भी है। आकारका अर्थ विशेष या पर्याय है।

अनाकारोपयोग— जिसके द्वारा पदार्थोंका सामान्यधर्म-सत्ता आदिका ज्ञान किया जाता है वह अनाकारोपयोग है। इसे दर्शनोपयोग भी कहते हैं।

प्रश्न १३— साकार–अनाकार–उपयोगके कितने-कितने भेद हैं?

उत्तर— साकार–उपयोगके आठ भेद है— (१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन पर्यवज्ञान (५) केवलज्ञान (६) मति-अज्ञान (७) श्रुतअज्ञान (८) विभङ्गज्ञान। तथा अनाकार-उपयोगके चार भेद है— (१) चक्षुदर्शन (२) अचक्षुदर्शन (३) अवधिदर्शन (४) केवल-दर्शन[1]।

ज्ञानमय उपयोगमे वर्तनेवाले जीवको जैनशास्त्रोंकी भाषामे सागारोवउत्ता और दर्शनमय उपयोगमे वर्तनेवाले जीवको अणागारोवउत्ता कहते हैं। इसका सस्कृत अनुवाद साकारोपयुक्त-ज्ञानयुक्त और अनाकारोपयुक्त–दर्शनयुक्त होता है।

प्रश्न १४— इन दोनों प्रकारके उपयोगोकी स्थिति कितनी है?

उत्तर— केवलज्ञानियोकी अपेक्षासे तो दोनो ही प्रकारके उपयोगोकी स्थिति एक–एक समय है अर्थात् उनके एक समय साकार-ज्ञानका उपयोग होता है और एक समय अनाकार-दर्शनका उपयोग होता है। तथा छद्मस्थोकी अपेक्षामे साकार–उपयोगकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और

(१) प्रज्ञापनापद- २९

अनाकार-उपयोगकी स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त ही है, किन्तु अनाकार-उपयोगसे साकारउपयोगकी स्थिति सख्यातगुणी अधिक है क्योकि पर्यायसहित वस्तुको जाननेमे समय अधिक लगता है[1]।

प्रश्न १५— किस जीवमें कितने उपयोग हो सकते हैं ?

उत्तर— सात नारकी नवग्रैवेयक तकके देवता एवं गर्भजतिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रियमे उपयोग नव हो सकते हैं। मति, श्रुत, अवधि ये तीन ज्ञान, मति, श्रुत, विभङ्ग—ये तीन अज्ञान और चक्षु, अचक्षु, अवधि—ये तीन दर्शन।

उपर्युक्त जीव सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि दोनो प्रकारके होते हैं। सम्यग्दृष्टियोकी अपेक्षासे उनमे तीन ज्ञान एव मिथ्यादृष्टियोकी अपेक्षासे तीन अज्ञान ग्रहण किये गये हैं। दर्शन दोनो ही प्रकारके जीवोमे एक समान होते हैं अत तीन लिए गए हैं।

पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु और वनस्पतिके जीवोमे तीन उपयोग होते हैं— मति-श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन।

ये जीव सब मिथ्यादृष्टि होते हैं अत. इनमे ज्ञान नही हो सकते। असज्ञि—मनुष्य और छप्पन अन्तर्द्वीपके युगलिकोमे चार उपयोग होते हैं— मति—श्रुतअज्ञान और चक्षु—अचक्षुदर्शन। ये जीव भी मिथ्यात्वी ही होते हैं।

द्वीन्द्रिय— त्रीन्द्रिय जीवोमें पाच उपयोग होते हैं— मति-श्रुतज्ञान, मति-श्रुतअज्ञान एव अचक्षुदर्शन। ये जीव अपर्याप्त अवस्थामें कई सम्यग्दृष्टि भी होते हैं अतः इनमे दो ज्ञान भी लिए गए हैं।

चतुरिन्द्रिय, असंज्ञि—तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय और तीस अकर्मभूमिके युगलिक—इन सभीमें छः उपयोग हो सकते हैं— मति—श्रुतज्ञान, मति—श्रुतअज्ञान और चक्षु अचक्षुदर्शन। ये जीव भी सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि

---

(१) प्रज्ञापनापद— २९

दोनो ही प्रकारके होते हैं अत इनमें ज्ञान-अज्ञान दोनो लिये है।

पांच अनुत्तरविमानके देवोमें छः उपयोग होते हैं— मति-श्रुत-अवधिज्ञान और चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शन। अनुत्तर विमानवासी देव सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं अत इनमें अज्ञान नही हो सकते।

गर्भजमनुष्योमें उपयोग बारहके बारह ही हो सकते हैं। मिथ्या-दृष्टि-मनुष्योकी अपेक्षासे तीन अज्ञान, तीनदर्शन। सम्यग्दृष्टि-मनुष्योकी अपेक्षासे तीनज्ञान, तीनदर्शन। साधुओकी अपेक्षासे मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञानियोकी अपेक्षासे केवलज्ञान-केवलदर्शन।

सिद्ध भगवान्मे उपयोग दो होते हैं— केवलज्ञान और केवल-दर्शन। एक-एक समयके बाद उनका उपयोग बदलता है। जैसे-एक समय केवलज्ञान और दूसरे समय केवलदर्शन। ऐसे सदा क्रम चलता ही रहता है[1]। सिद्ध होते समय केवलज्ञानका उपयोग होता है[2]।

प्रश्न १६— ज्ञान, अज्ञान तथा दर्शनके अधिकारी-जीवोंमें कौन किससे कम, ज्यादा एवं तुल्य हैं?

उत्तर— सबसे थोडे मन पर्यवज्ञानी हैं। अवधिज्ञानी उनसे असख्यगुने हैं। मति-श्रुतज्ञानी परस्पर तुल्य हैं एवं अवधिज्ञानियोंसे विशेषाधिक-दुगुनोंसे कुछ कम हैं। मति-श्रुतज्ञानियोंसे विभङ्गज्ञानी असख्यातगुने हैं। विभङ्गज्ञानियोंसे केवलज्ञानी अनन्तगुने हैं। मति-श्रुतअज्ञानी परस्पर तुल्य हैं और केवलज्ञानियोंसे अनन्तगुने हैं।

दर्शनके अधिकारियोमें सबसे थोडे अवधिदर्शनवाले जीव हैं। उनसे चक्षुदर्शनवाले असख्यातगुने हैं। उनसे केवलदर्शनवाले अनन्तगुने हैं और उनसे अचक्षुदर्शनवाले जीव अनन्तगुने हैं[3]।

---

(१) उपयोगोंका वर्णन प्रज्ञापनापद २९ के आधारसे किया गया है।

(२) प्रज्ञापनापद २६ सूत्र ७१४

(३) प्रज्ञापना पद- ३ सूत्र १८०

प्रश्न १७— बारह उपयोगोंमें पासणया कितने हैं एवं अपासणया कितने हैं ?

उत्तर— जो ज्ञान-अज्ञान एव दर्शन दीर्घकाल विषयक हैं अर्थात् तीनो कालको जानते-देखते हैं या स्पष्टरूपसे देखते हैं वे पासणया एव जो मात्र वर्तमानकाल विपयक हैं या अस्पष्ट हैं वे अपासणया कहलाते है। हाँ! तो पाँच ज्ञान एवं तीन अज्ञानोमे मतिज्ञान-मतिअज्ञान- ये दो तो अपासणया हैं (क्योकि अवग्रहादिरूप-मतिज्ञान एव मतिअज्ञान मात्र वर्तमानकालको जानते है) तथा श्रुत आदि चार ज्ञान और दो अज्ञान-ये छ हो तीनो कालको जाननेके कारण पासणया हैं।

चार दर्शनोमे अचक्षुदर्शन स्पष्ट नही देखनेके कारण अपासणया है तथा चक्षुदर्शन स्पष्ट देखता है और अवधिदर्शन-केवलदर्शन त्रिकाल-विषयक हैं अत ये तीनो पासणया हैं।

प्रश्न १८ — बारह उपयोगोकी स्थिति समझाइए ?

उत्तर— अनेक जीवोकी अपेक्षासे तो सभी उपयोग शाश्वत हैं और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है—

मति-श्रुतज्ञानकी स्थिति जघन्य अन्तमुंहूर्त है एवं उत्कृष्ट छासठ सागरसे कुछ अधिक है। अन्तमुंहूर्तका तत्त्व यह है कि कई जीव सम्यक्त्वी होकर अन्तमुंहूर्तके बाद पुन मिथ्यात्वी बन जाते हैं, तब उनके मति-श्रुतज्ञान मति-श्रुतअज्ञानके रूपमे परिणत हो जाते हैं अत मतिश्रुतज्ञानकी जघन्यस्थिति अन्तमुंहूर्त कही गई है।

साधिक-छासठ सागरका रहस्य यह है कि तेतीससागरकी आयुष्य-वाले अनुत्तरविमानके देवता मति-श्रुतज्ञानयुक्त च्यवकर मनुष्य बन जाते हैं एव पुन उसी अवस्थामे मरकर फिरसे अनुत्तरविमानमे उत्पन्न हो जाते । तेतीस-तेतीस सागरके दो जन्म तो अनुत्तरविमानके हो गए और बीचमे एक जन्म मनुष्यका होगया (जो ज्यादासे ज्यादा करोड़पूर्व

का हो सकता है) एव तीनो जन्मोमे मति-श्रुतज्ञान विद्यमान रहे। सम्भवत इसी अपेक्षामे इनकी उत्कृष्ट स्थिति छासठसागरसे कुछ अधिक ली गई है।

अवधिज्ञानकी स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छासठसागरसे कुछ अधिक है। उत्कृष्ट स्थितिका विवेचन मति-श्रुतज्ञानके समान है। जघन्यस्थितिका तत्त्व यह है कि नारक-देव जब मिथ्यादृष्टिसे सम्यग्दृष्टि वनते हैं तव उनका विभङ्गज्ञान अवधिज्ञानके रूपमे परिणत हो जाता है। यदि वे उसी समय मरजाते हैं, तो उनका वह अवधिज्ञान मात्र एक समय रहकर नष्ट हो जाता है अतएव अवधिज्ञानकी जघन्यस्थिति एक समयकी मानी गई है।

मन पर्यवज्ञानकी स्थिति जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट देश-ऊन (नव वर्ष कम) करोडपूर्वकी है। मतलब यह है कि मन पर्यवज्ञान साधुओमे ही हो सकता है। नव वर्षसे पहले साधु वन नही सकते एव करोड-पूर्वसे ज्यादा जी नही सकते अत इस ज्ञानकी उत्कृष्ट स्थिति देश-ऊन करोडपूर्व की है और ज्ञान उत्पन्न होते ही आयुष्य पूर्ण कर जानेवाले साधुओकी अपेक्षामे जघन्यस्थिति एक समय की है।

केवलज्ञानकी जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति सादि-अपर्यवसित है अर्थात् केवलज्ञानकी आदि तो है, किन्तु अन्त नही है क्योकि उत्पन्न होनेके वाद फिर वह कभी नष्ट नही होता।

मति-श्रुतअज्ञान तीन तरहके है— अनादि–अनन्त, अनादि–सान्त और सादि–सान्त।

कभी मोक्ष नही जानेवाले भव्य तथा अभव्य जीवोकी अपेक्षासे मति-श्रुतअज्ञान अनादि-अनन्त हैं। जो अनादिकालसे अवतक मिथ्यादृष्टि लेकिन भविष्यमें सम्यक्त्वी वनकर मोक्ष जानेवाले है, उन जीवोकी

अपेक्षासे अनादि-सान्त हैं तथा सम्यक्त्व खोकर मिथ्यादृष्टि बने हुए जीवोकी अपेक्षासे सादि-सान्त हैं। उनकी स्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट देशऊन अर्धपुद्गलपरावर्तन अर्थात् अनन्त कालचक्र जितनी है।

विभङ्गज्ञानकी स्थिति जघन्य एक समय है[1] और उत्कृष्ट तेतीस-सागर एव देशऊन-करोडपूर्व अधिक है। तत्व यह है कि कोई करोड-पूर्वकी आयुवाला मिथ्यादृष्टितिर्यञ्च व मनुष्य कुछ आयु व्यतीत होने पर विभङ्गज्ञानी बने एवं उस ज्ञान सहित मरकर यदि सप्तम नरकमे तेतीस-सागरके आयुष्यवाला नैरयिक बन जाय, तो उसका विभङ्गज्ञान तेतीस-सागर और देशऊन-करोडपूर्व तक रह जाता है।

चक्षुदर्शनकी जघन्यस्थिति अन्तमुहूर्त है[2] और उत्कृष्ट हज़ार सागरसे कुछ अधिक है। चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय जीवोमे ही होता है। मतलब यह निकला कि जीव लगातार चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियके जन्म अधिक से अधिक साधिक-एकहज़ारसागर तक कर सकता है। उसके बाद उसे अवश्य त्रीन्द्रिय-द्वीन्द्रिय आदि होना ही पडता है।

अचक्षुदर्शन दो प्रकारका है— अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त।

---

(१) कोई सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी कदाच मिथ्यात्वी बन जाता है तो उसका अवधिज्ञान विभङ्गज्ञान कहलाने लगता है एवं मिथ्यात्वी बनते ही यदि वह मर जाता है तो उसका विभङ्गज्ञान मात्र एक समय ही रहा ऐसे माना जाता है।

(२) जब द्वीन्द्रियादि जीव चतुरिन्द्रियमें उत्पन्न होते हैं एवं वहां अन्तमुहूर्त रहकर पुनः मरकर द्वीन्द्रियादि बन जाते हैं, उस समय (चतुरिन्द्रियके भवकी अपेक्षासे) चक्षुदर्शनकी जघन्यस्थिति अन्त-मुहूर्त कहलाती है।

कभी मोक्ष नही जानेवाले जीवोकी अपेक्षासे अनादि-अनन्त है और मोक्षगामी जीवोकी अपेक्षासे अनादि-सान्त है ।

अवधिदर्शन, केवलदर्शनकी स्थिति अवधिज्ञान और केवलज्ञानके समान है ।
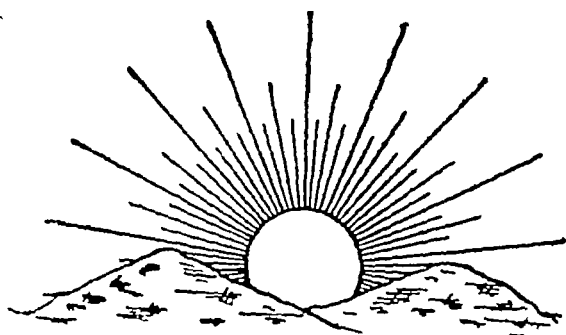
ज्ञानप्रकाशमें प्रयुक्त आगम

एवं

ग्रन्थोंकी अकारादि क्रमसे सूची

(१) अनुयोगद्वारसूत्र (सुत्तागमेके अन्तर्गत)
(२) आचारदिनकर (श्रीवर्धमानसूरिकृत)
(३) आचाराङ्ग–वृत्ति
(४) आचाराङ्गसूत्र
(५) आवश्यकसूत्र
(६) आवश्यक (हरिभद्रीय)
(७) उत्तराध्ययनकी जोड (श्रीजयाचार्यकृत)
(८) उत्तराध्ययन–निर्युक्ति
(९) उत्तराध्ययनसूत्र
(१०) कर्मग्रन्थ–वृत्ति
(११) कल्पसूत्र (सुत्तागमे)
(१२) कल्याणके अङ्क
(१३) गोम्मटसार
(१४) जैनसिद्धान्तदीपिका (आचार्य श्री तुलसीकृत)
(१५) जैनसिद्धान्तवोल–सग्रह
(१६) तत्त्वार्थसूत्र (श्रीउमास्वातिकृत)
(१७) दशवैकालिक–निर्युक्ति
(१८) दशवैकालिकसूत्र

(१९) दशाश्रुतस्कन्धसूत्र
(२०) धर्मसंग्रह
(२१) नन्दी–टीका
(२२) नन्दीसूत्र (पूज्य श्री हस्तिमलजीकृत हिन्दी अनुवादवाला)
(२३) नवभारत (हिन्दी दैनिक-समाचारपत्र)
(२४) निशीथ–चूर्णि
(२५) निशीथसूत्र
(२६) प्रज्ञापना टीका
(२७) प्रज्ञापनासूत्र (सुत्तागमे)
(२८) प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार
(२९) प्रवचनसारद्धार
(३०) भगवती–टीका
(३१) भगवती सूत्र (सुत्तागमे)
(३२) मिलाप (उर्दू दैनिक-समाचारपत्र)
(३३) लोकप्रकाश (धनमुनिकृत)
(३४) विज्ञानके नये आविष्कार
(३५) विशेषावश्यक–भाष्य
(३६) व्यवहार–चूलिका
(३७) व्यवहारसूत्र
(३८) सत्तरिसय ठाणावृत्ति
(३९) समयाङ्गसूत्र (सुत्तागमे)
(४०) स्थानाङ्ग–टीका
(४१) स्थानाङ्गसूत्र (आगमोदयसमितिवाला)
(४२) स्याद्वादमञ्जरी
(४३) हिन्दुस्तान (हिन्दी दैनिक–समाचारपत्र)

ज्ञानप्रकाशका शुद्धाशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	सू. ३१८	सू. ३१७
४	२५	पद-१५	पद १३
,,	२५	सू. १६४	सू १२४
६	२५	सू. ३८	सू. ३६
१५	३	दुद्धि	वुद्धि
२४	१५	नोट भूलसे बीचमे छप गया है वह नीचे होना चाहिए	
२५	१७	(१) स्था. ६ सू. ५१०	(१) स्था. ६ सू. ५१० तथा तत्त्वार्थसूत्र १।१६ के आधारसे
३२	२४	भग. श. ७ उ. ६	भग श. ७ उ. ८
३२	२६	पद ६	पद ८
४२	२३	गा. ६	गा. ८
४६	२०	अर्धं	अर्थ
६०	१६	वर्पों	वर्षों
६३	२१	इसका	इनका
६५	१	पर्यावलोचन	पर्यालोचन
६५	८	चेष्टाओंसे	चेष्टाओंमें
६६	१	षास	पास

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	४	पुष्पदैवत	पुण्यदैवत
७८	२३	सूत्र १४४	सूत्र १४५
८१	४	सूत्रकृतारांग	सूत्रकताङ्ग
८१	२३	तन्दुलर्वैचारिक	तन्दुलवैचारिक
८३	२४	इसमे	उनमे
९८	६	चौका	चौथा
९९	१८	जीवभिगम	जीवाभिगम
१०१	६	पढ़ाना	पढ़ना
१०४	२४	१५१	१३७
१०६	३	अनिह्न	अनिन्हव
,,	२०	उवहाणेतहय निन्हवणे	उवहाणे चेव तह अनिण्हवणे
,,	२१	अठविहो	अट्ठविहो
१२०	८	दुर्विदग्ध	दुर्विदग्धा
१२०	२५	गाथा १६२ १६३	गाथा १६१-१६२-
१४१	१२	भोगोंकी	योगोंकी
१४४	१७	जगत्त	जगत
१५७	८	केवलदर्ज्ञन	केवलदर्शन
१५८	६	ऋ हों	ऋहों

लेखककी अन्य प्रकाशित रचनाएँ

हिन्दी	मूल्य	प्राप्तिस्थान
१. सच्चा धन	३७ न. पै	श्री जैन श्वे. ते सभा, मालेर-कोटला (पन्जाब)
२. प्रश्न-प्रकाश	७५ न. पै	श्री जैन श्वे. ते महासभा, ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता १
३. चमकते चाँद	३० न. पै.	श्री जैन श्वे ते सभा भीनासर (राजस्थान)
४ जैन-जीवन	६२ न. पै	श्री जैन श्वे ते सभा गंगाशहर (राजस्थान)
५ एक आदर्श आत्मा	२५ न पै	श्री मदनचन्द-सम्पतराय बोरड दुकान नं० ४०, धानमण्डी श्रीगंगानगर (राजस्थान)
६ सोलह सतिया	२ ५० रु०	
७ मनोनिग्रह के दो मार्ग	१.२५ रु०	
८ ज्ञानके गीत	७५ न. पै.	श्री जैन श्वे. ते. सभा भीनासर (राजस्थान)
९ लोक-प्रकाश	१.२५ रु०	श्री जैन श्वे. ते सभा बालोतरा (राजस्थान)
१०. भजनो की भेंट	७५ न. पै.	
११. चौदह नियम	६ न. पै.	श्री जैन श्वे. ते. सभा, गंगाशहर (राजस्थान)
संस्कृत		
१२ गणिगुणगीतिनवकम्		
गुजराती		
१३, तेरापन्थ एटले शुं ?		

	मूल्य	प्राप्ति स्थान
१४ धर्म एटले शु ?	६२ न. पै	नेमीचन्द–नगीनचन्द जवेरी चन्द्रमहल १३०, शेखमेमन स्ट्रीट, बम्बई-२,
१५. परीक्षक बनो !	७५ न पै	
उर्दू		
१६ जीवन–प्रकाश		श्री जैन श्वे. ते. सभा नाभा (पञ्जाब)

लेखक की अप्रकाशित रचनाएँ

संस्कृत

१. देवगुरुधर्म द्वात्रिंशिका
२ प्रास्ताविक-श्लोकशतकम्
३ एकाह्निक–श्रीकालुशतकम्
४. श्रीकालुगुणाष्टकम्
५ श्रीकालुकल्याणमन्दिरम्
६. भाविनी
७ ऐक्यम्
८ श्री भिक्षुशब्दानुशासनलघुवृत्ति-तद्धितप्रकरणम्

गुजराती

९. गुर्जरभजनपुष्पावलि
१० गुर्जरव्याख्यानरत्नावलि

हिन्दी

११ वैदिकविचारविमर्शन
१२ संक्षिप्त–वैदिकविचारविमर्शन
१३ अवधान–विधि
१४ संस्कृत बोलनेका सरल तरीका
१५ दोहा-सन्दोह
१६ व्याख्यानमणिमाला
१७, व्याख्यानरत्नमञ्जूषा
१८, जैनमहाभारत आदि बीस व्याख्यान
१९ उपदेशसुमनमाला
२० उपदेशद्विपञ्चाशिका

राजस्थानी

२१. धनबावनी
२२ सवैयाशतक
२३ औपदेशिक ढालें
२४ प्रास्ताविक ढालें
२५ कथाप्रबन्ध
२६. छ बडे व्याख्यान
२७ ग्यारह छोटे व्याख्यान
२८ सावधानी रो समुद्र

पञ्जाबी

२९. पञ्जाब–पच्चीसी